2

संयोजन के सिद्धान्त
(Principles of Composition)

संयोजन से तात्पर्य है– **'दो अथवा अधिक कला तत्त्वों की समरसतापूर्ण समायोजना।'** चित्र के सभी तत्त्वों – रेखा, रूप, तान, पोत आदि को संयोजन के नियमों के आधार पर अथवा सुनियोजित करके प्रयोग में लाना ही **'संयोजन'** के अन्तर्गत स्थान रखता है। इन्हीं तत्त्वों के सशक्त सुनियोजन के आधार पर ही कलाकार अपनी अभिव्यक्ति को आकर्षक व सौन्दर्यपूर्ण बनाता है। संयोजन के नियमों का प्रयोग कलाकार की वैयक्तिक रुचि व उसके व्यक्तिगत अनुभवों से भी जुड़ा होता है और इसी प्रकार दर्शक भी किसी संयोजन से प्रभावित होते हैं और उन्हें वह रुचिकर प्रतीत होता है परन्तु किन्हीं अन्य को अरुचिकर भी प्रतीत हो सकता है। **इसी व्यक्तिगत और वैचारिक भिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न संयोजनों में भिन्नता होना स्वाभाविक है।** अतः चित्र संयोजन करते समय चित्र के तत्त्वों– रेखा, रूप, वर्ण आदि का ज्ञान होना आवश्यक है। इन तत्त्वों के सम्मिलित प्रभाव दर्शक की अनुभूति को प्रभावित करते हैं। यह एक कलाकार के लिये अन्वेषण का विषय भी हो सकता है कि– वह अपने सृजन की प्रस्तुति को अधिक से अधिक प्रभावी कैसे बना सकता है। अतः संयोजन चाहे वस्तुनिष्ठ हो, ज्यामितीय अथवा सूक्ष्म हो, सन्तुलन और आकर्षण के नियम उन्हें समान रूप से प्रभावित करते हैं। किसी भी कलाकृति का मूल्यांकन करने में संयोजन के सिद्धान्तों को ही आधार माना जाता है। संयोजन के ये सिद्धान्त निम्न प्रकार से हैं–

(1) सहयोग या एकता (Unity)

(2) सामन्जस्य (Harmony)

(3) सन्तुलन (Balance)

(4) प्रभाविता अथवा प्राबल्य (Dominance or Emphasis)

(5) प्रवाह (ताल, लय) (Rhythm)

(6) प्रमाण या अनुपात (Proportion)

2

संयोजन के सिद्धान्त
(Principles of Composition)

संयोजन से तात्पर्य है– 'दो अथवा अधिक कला तत्त्वों की समरसतापूर्ण समायोजना।' चित्र के सभी तत्त्वों – रेखा, रूप, तान, पोत आदि को संयोजन के नियमों के आधार पर अथवा सुनियोजित करके प्रयोग में लाना ही **'संयोजन'** के अन्तर्गत स्थान रखता है। इन्हीं तत्त्वों के सशक्त सुनियोजन के आधार पर ही कलाकार अपनी अभिव्यक्ति को आकर्षक व सौन्दर्यपूर्ण बनाता है। संयोजन के नियमों का प्रयोग कलाकार की वैयक्तिक रुचि व उसके व्यक्तिगत अनुभवों से भी जुड़ा होता है और इसी प्रकार दर्शक भी किसी संयोजन से प्रभावित होते हैं और उन्हें वह रुचिकर प्रतीत होता है परन्तु किन्हीं अन्य को अरुचिकर भी प्रतीत हो सकता है। **इसी व्यक्तिगत और वैचारिक भिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न संयोजनों में भिन्नता होना स्वाभाविक है।** अतः चित्र संयोजन करते समय चित्र के तत्त्वों– रेखा, रूप, वर्ण आदि का ज्ञान होना आवश्यक है। इन तत्त्वों के सम्मिलित प्रभाव दर्शक की अनुभूति को प्रभावित करते हैं। यह एक कलाकार के लिये अन्वेषण का विषय भी हो सकता है कि– वह अपने सृजन की प्रस्तुति को अधिक से अधिक प्रभावी कैसे बना सकता है। अतः संयोजन चाहे वस्तुनिष्ठ हो, ज्यामितीय अथवा सूक्ष्म हो, सन्तुलन और आकर्षण के नियम उन्हें समान रूप से प्रभावित करते हैं। किसी भी कलाकृति का मूल्यांकन करने में संयोजन के सिद्धान्तों को ही आधार माना जाता है। संयोजन के ये सिद्धान्त निम्न प्रकार से हैं–

(1) सहयोग या एकता (Unity)

(2) सामन्जस्य (Harmony)

(3) सन्तुलन (Balance)

(4) प्रभाविता अथवा प्राबल्य (Dominance or Emphasis)

(5) प्रवाह (ताल, लय) (Rhythm)

(6) प्रमाण या अनुपात (Proportion)

सहयोग अथवा एकता
(Unity)

सहयोग से तात्पर्य है– **'संयोजन के अन्तर्गत प्रयोग में आने वाले विभिन्न तत्त्वों के मध्य एकता व समानता जिसमें सम्पूर्ण संयोजन एकता के सूत्र में बंधा रहे।'** चित्र के विभिन्न तत्त्व– रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत आदि सभी एक दूसरे से सम्बन्धित हों तभी चित्र में सहयोग सम्भव है। चित्र के विभिन्न तत्त्वों के मध्य एक तर्क–संगत सम्बन्ध को ही सहयोग कहते हैं। अतः सहयोग अथवा एकता वह स्थिति है– जहाँ **'समय और अन्तराल'** (Time and Space) के अनुसार कला–रचना के अन्तर्गत विभिन्न तत्त्वों का समायोजन सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण से किया जाये।

सहयोग व एकता का उद्देश्य

सहयोग का उद्देश्य चित्र को अनेक आकर्षण केन्द्रों से बचाना है, अर्थात् संयोजन में अनेक आकर्षण केन्द्र नहीं होने चाहिये। प्रत्येक चित्र का अपना एक लक्ष्य होता है और जब उसके सभी तत्त्व एक दूसरे से सम्बन्धित होकर एक ही लक्ष्य को लक्षित करते हों तभी चित्र में सहयोग भाव उत्पन्न होता है। अनेक चित्रों का समूह एक ही स्थान पर एकत्रित हो, तो वह श्रेष्ठ संयोजन नहीं कहलायेगा, जबकि एक ही चित्र में एक ही विषय–भाव तथा उसी से सम्बन्धित रूप, वर्ण, तान, रेखा आदि का ऐक्य भाव रहे तो चित्र में सहयोग की उपस्थिति दिखाई देती है। चित्र में अंकित अनेक रूपाकृतियाँ तथा वर्ण भी एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हों कि सम्पूर्ण चित्र एक ही संयोजन प्रतीत हो। **अतः चित्र की विषय–वस्तु चाहे कुछ भी क्यों न हो, उसकी सफल अभिव्यक्ति के लिये सहयोग की उपस्थिति आवश्यक है।**

सहयोग अथवा एकता का स्वरूप

कला रचना में सहयोग की स्थिति **"विचार"** के स्तर से प्रारम्भ होती है। अर्थात् जो दिखाई दे रहा है, वही मानसिक तथा कलात्मक गठन का प्रतीक है। इस प्रकार दृष्टिकोण ही संयोजन का प्रथम लक्ष्य है। प्लेटो के अनुसार– **"विचार, रचनाकार के माध्यम से स्थूल स्वरूप ग्रहण करता है।"** अपने विचार के रूपान्तरण के क्रम में रचनाकार कला–तत्त्वों को इस प्रकार समायोजित करता है कि विचार की अभिव्यक्ति अधिकतम व कलात्मक रूप से हो सके। अतः जहाँ विचार निश्चित कला तत्त्वों के साथ संयुक्त होकर अभिव्यक्त हों वहीं एकता की स्थिति कही जानी चाहिये, जो हमारी दृष्टि को भी आकर्षक लगे। **कलाकार अपने**

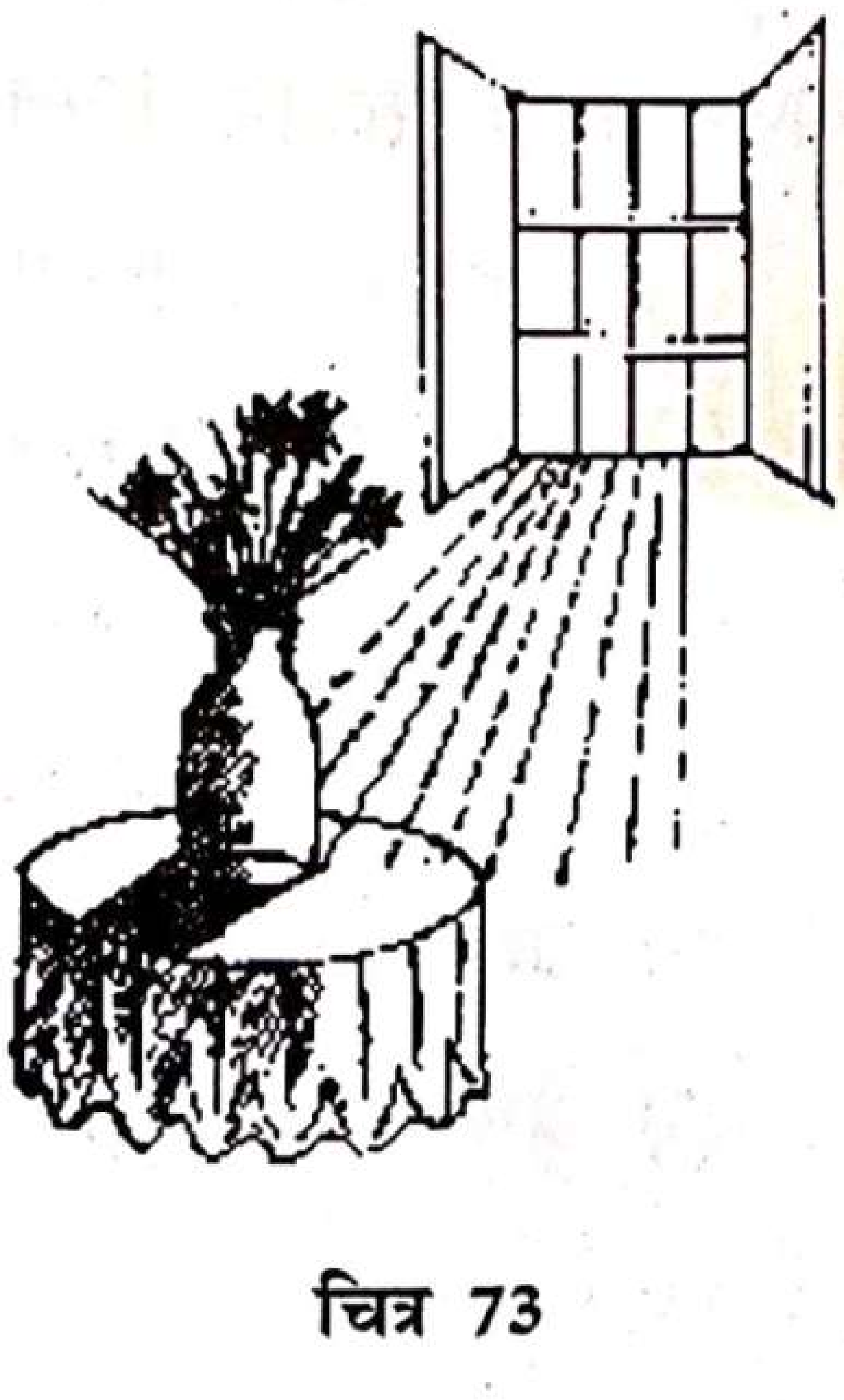

चित्र 73

माध्यम के तत्त्वों का, जैसे— संगीतकार स्वरों का, कवि शब्दों का, नर्तक देह—भंगिमा का, मूर्तिकार पत्थर अथवा मिट्टी आदि के परिमाण का व चित्रकार चित्र के तत्त्वों— रेखा, रंग, रूप आदि का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार करता है कि उससे ऐक्य प्रभाव उत्पन्न हो सके। एक सहृदय दर्शक पर इसका प्रभाव प्रथम रूप से दृष्टि पर ही होना चाहिये, क्योंकि चित्र—कला एक चाक्षुष कला है, परन्तु अपरिपक्व दर्शक चित्र में विषय—वस्तु को पहचानने के क्रम में इस सहयोग व ऐक्य प्रभाव की उपेक्षा कर देता है। उदाहरण के लिए— किसी व्यक्ति चित्र में व्यक्ति की पहचान चित्र के कलात्मक प्रस्तुतीकरण को गौण कर देती है अथवा— कमरे की खुली खिड़की के सामने मेज पर रखे फूलदान पर खिड़की से आता प्रकाश एकाएक दर्शक की दृष्टि को आबद्ध कर देता है। अतः प्रथम दृष्टि का यह **"प्रभाव"** सम्पूर्ण वातावरण की कलात्मकता को खत्म कर सकता है यदि हम फूलों की जाति और उसके अन्य रूपाकारों में उलझ जायेंगे। अतः यह जो **"दृष्टिगत प्रभाव"** है यही चित्र का **"सहयोग"** है। दृश्य रूप ही आकर्षण का आधार है। एक कलाकार दृश्यरूप की कलात्मकता से आकर्षित होकर सफल सृजन कर सकता है। दृष्टिगत सहयोग के अभाव में विषय—वस्तु अथवा विचार उच्च होने पर भी श्रेष्ठ चित्र का निर्माण नहीं हो सकता। *(चित्र सं. 73)*

रचना में सहयोग के दो स्वरूप निर्धारित किये जा सकते हैं—

(1) सक्रिय सहयोग **(Dynamic Unity)**

(2) निष्क्रिय सहयोग **(Static Unity)**

एक प्रभावपूर्ण तथा क्रमिक उतार—चढ़ाव से युक्त रचना **"सक्रिय सहयोग"** का उदाहरण कही जा सकती है। जैसे— मानव आकार। आकार के विभिन्न भाग हो सकते हैं, उनमें विभिन्न गुण, लय, गति आदि का आपसी सम्बन्ध ही चित्र में सक्रिय ऐक्य भाव उत्पन्न करता है। इन तत्त्वों की किंचित् विभिन्नता ही चित्र को आकर्षक बनाती है। यही भारतीय चित्रकला के **"षडंग"** का **"रूपभेद"** है। इसी को **"जार्ज सांतायन"** ने **"अनेक रूपता में सहयोग" (Multiplicity in Uniformity)** कहा है। *(चित्र सं. 74)*

चित्र 74 : बोधिसत्व पद्मपाणि

इसके विपरीत निश्चित रूपाकार, वर्ण वाली रचना एक **"निष्क्रिय सहयोग"** का सृजन करती है। जैसे– यदि आकार के सभी तत्त्व एक समान आकार, रंग, तान, के हों या उनमें भिन्नता केवल संख्या की है तो यही सहयोग एकरसता व निष्क्रियता में बदल जायेगा। ये संयोजन ज्यामितीय रूपाकारों, निश्चित आकारों एवं पुनरावृत्ति वाली संरचनाओं पर आधारित होते हैं। सहयोग का यह स्वरूप **'आदिम अलंकरण'** (Primitive ornamentation) अथवा **'वस्त्र सम्बन्धी अभिकल्पनाओं'** (Textile Designs) में अधिकांश रूप से देखा जा सकता है जिनमें कोई निश्चित आकर्षण बिन्दु के न होने से स्थिरता प्रतीत होती है। *(चित्र सं. 75)*

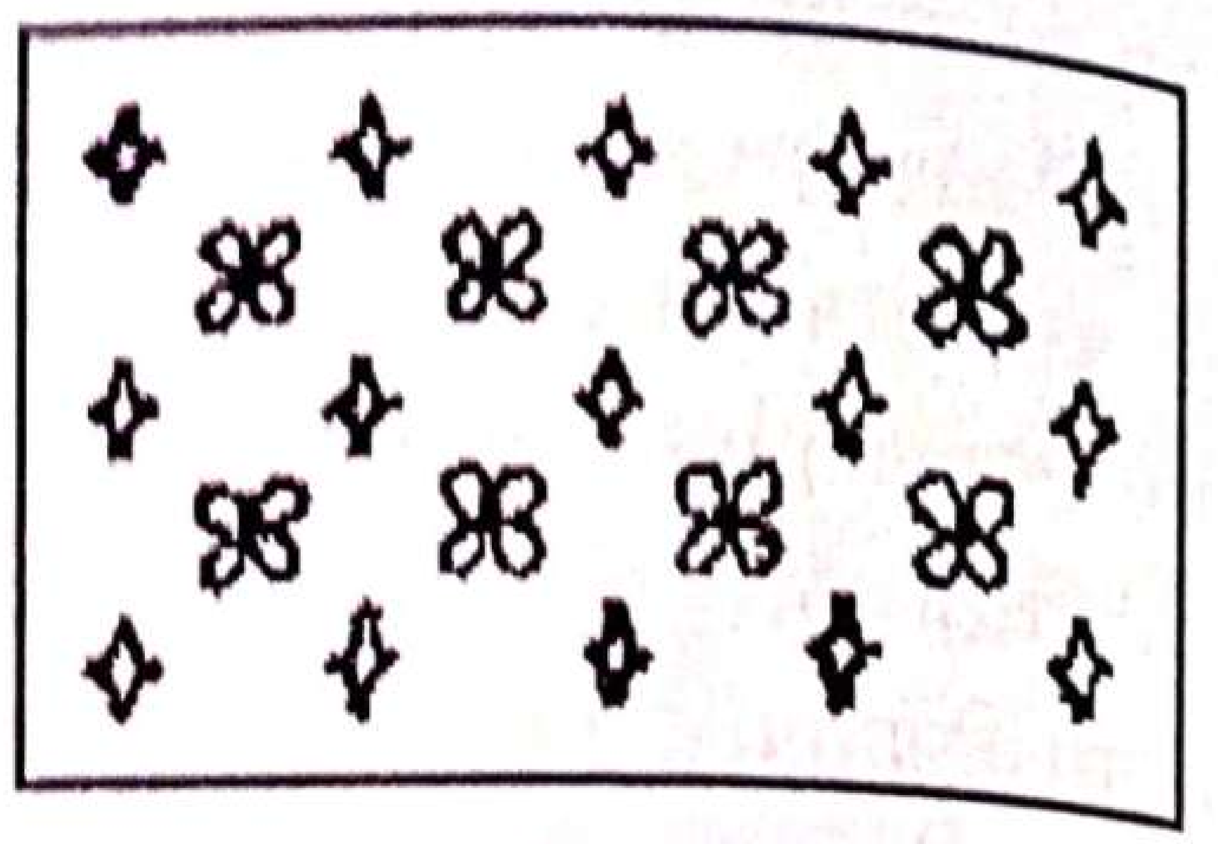

चित्र 75

चित्र में सहयोग निर्धारण

चित्र में अंकित विभिन्न आकृतियाँ जब किसी क्रम से सम्बन्धित होती हैं, तो सहयोग भाव का सृजन होता है। यह क्रम साधारण और जटिल दोनों ही प्रकार का हो सकता है। चित्र का संयोजन यदि इस प्रकार का हो कि उसमें अनेकता में एकता दिखाई दे, तो वह देखने में सुन्दर दिखेगा तथा मन ऊबता नहीं है। इसके विपरीत सहयोग सृजन सरल आकारों की एक जैसी आवृत्ति करके बना है तो यह अधिक आकर्षक रूप का सृजन नहीं करेगा। उदाहरण के लिये– चित्र का सम्पूर्ण आकार यदि एक जैसे आयतों में विभक्त हो तो वह अत्यन्त साधारण व देखने में अधिक सुन्दर संयोजन नहीं होगा, परन्तु यदि हम उनके आयतों के माप में किंचित परिवर्तन कर दें तो सम्पूर्ण रूप आकर्षक सहयोग में परिवर्तित हो जायेगा। *(चित्र सं. 76 क, ख)*

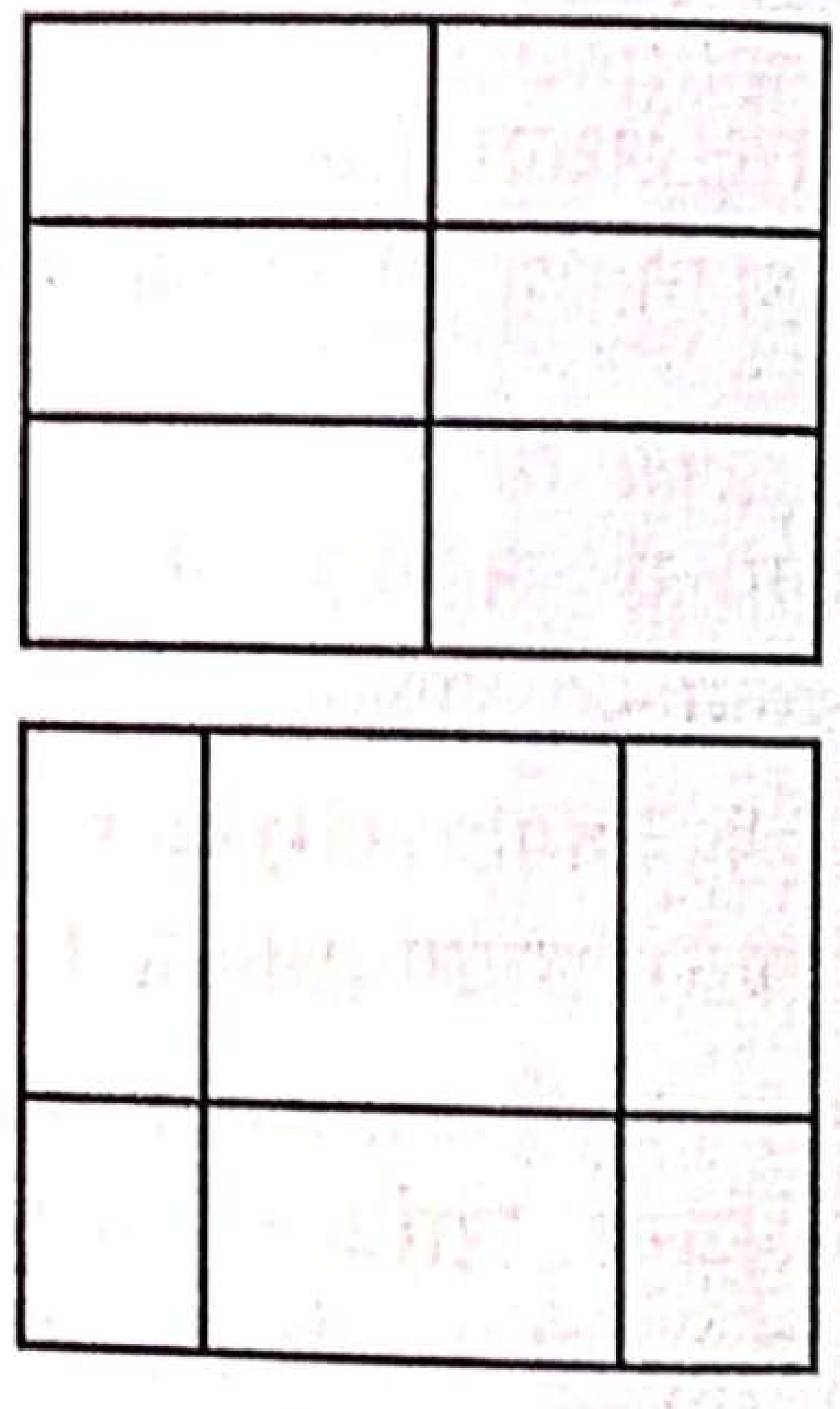

क

ख

चित्र 76

कला–रचना में **'एकता या सहयोग'** प्राप्त करने के प्रमुख नियम इस प्रकार हैं–

(1) रचना–तत्त्वों का सीमित प्रयोग किया जाये, जिससे मूल विचार को ग्रहण करने में कठिनाई ना हो।

(2) सरल सहयोग की स्थापना, अर्थात् समान आकार एवं वर्ण वाले रूपाकारों की पुनरावृत्ति। स्थापत्य–रचना एवं वस्त्र अभिकल्पना में इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

(3) विभिन्न कला–तत्त्वों में समरूपता एवं सम्बन्ध–स्थापना की स्थिति भी एकत्व–रचना में सहायक होती है।

(4) कलाकृति की बाह्य–रेखा के आधार पर भी एक अलग से इकाई बनाकर भी सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

विरोधाभास एवं सहयोग (Contrast and Unity)

चित्रण में सहयोग सृजन के लिये विरोधाभास का बहुत महत्त्व है। यद्यपि सहयोग व विरोधाभास एक दूसरे के **'विलोमार्थक'** शब्द हैं परन्तु जहाँ एक ओर समान आकारों का सम्बन्ध सहयोग उपस्थित करता है, वहीं विभिन्न आकारों का सम्बन्ध भी सहयोग उपस्थित करता है। यहाँ **'विरोधाभास'** (Contrast) को **'विविधता'** (Variety) के रूप में लिया जाना चाहिये। इसका प्रयोग रचना में सहयोग की एकरसता को दूर करने तथा संयोजन को रुचिकर बनाने के लिये किया जाता है।

चित्र 77 : यक्ष दम्पत्ति (अजंता)

चित्रण में मुख्य भूमिका आकारों के आपसी सम्बन्ध की होती है, चाहे वह एक समान हों या असमान। आकारों का यह आपसी सम्बन्ध ही सहयोग कहलाता है। चित्र–भूमि पर परस्पर विरोध की स्थिति बनाने वाले तत्त्वों का प्रयोग करने से **"चाक्षुष–शक्ति" (Visual Force)** से युक्त एक निश्चित **"दृष्टि–पथ" (Eye-Path)** की रचना होती है, जो दर्शक को देर तक बाँधे रखती है। जैसे– विरोधी वर्गों की योजना। भारतीय लघु–चित्रों में यह सहयोग साधारण व एक समान रूपों का संयोजन है। जबकि अंजता में आकारों का विरोधाभास होने से यह सहयोग जटिल हो गया है, जो देखने में अधिक आकर्षक लगता है। *(चित्र सं. 77)*

इस प्रकार **'सहयोग' से तात्पर्य है– चित्र के सभी तत्त्वों– रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत में सहयोग स्थापित होना।** यह अन्तराल निरूपण तथा विषय–वस्तु से भी सम्बन्धित है।

OOO

प्रश्नावली

(1) सहयोग से क्या तात्पर्य है? चित्रण में इसके निर्धारण व उद्देश्यों की चर्चा कीजिये।

(2) विरोधाभास व सहयोग से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित समझाइये।

(3) संयोजन के सिद्धान्त कौन–कौन से हैं? सहयोग के सिद्धान्त को विस्तार से समझाइये।

सामंजस्य
(Harmony)

कला रचना के अन्तर्गत प्रयोग में आने वाले कला तत्त्वों– रेखा, रूप, वर्ण, पोत आदि की पारस्परिक सम्बद्धता व समन्वय ही "सामंजस्य" कहलाता है। अर्थात् यह वह सिद्धान्त है– जहाँ चित्रण के सभी तत्त्वों के बीच मेल दिखाई देता है। सामंजस्य दो **"अंतिम छोर" (Two Extremes)** के बीच की स्थिति है, जो कि दोनों की विशेषताओं को सम्मिलित करता है अथवा यूँ कहा जाये कि– सामंजस्य "सलेटी" (Middle Gray) रंग की भाँति है, जो कि दो रंगों (काला + सफेद) से मिलकर बनता है और जिसमें दोनों की विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं।

अतः "सामंजस्य" परस्पर विपरीत तत्त्वों, स्थितियों के मध्य की व्यवस्था है, जिसमें दोनों के कुछ अंश समाहित होकर विरोध के स्थान पर समन्वय और मेल करते हैं।

सामंजस्य का स्वरूप

"सामंजस्य" को हम रचना–तत्त्वों की ऐसी संगति कह सकते हैं, जो संयोजन में "एकत्व" की स्थापना करने में सहायक होते हैं। सम्पूर्ण संयोजन या उसकी विभिन्न इकाइयों (Units) में प्रयोग में आने वाले चित्र के विभिन्न तत्त्व– रेखा, रूप व वर्ण आदि के मध्य किसी विचार के अनुरूप समानता होने से ही सामंजस्य की स्थिति बनती है। जब किसी चित्र के सभी तत्त्व शक्तिशाली सादृश्य से बँधे हों, तो वह "सामंजस्य चयन" (Harmonious selection) कहलाता है, और जब इन तत्त्वों को एक व्यवस्था के अन्तर्गत कलाकृति के रूप में ढाला जाएँ तो यह **"सामंजस्य–व्यवस्था"** (Harmonious Arrangement) कही जायेगी। संगीत की शास्त्रीय–व्यवस्था के अनुसार **"सामंजस्य"** को स्वरों में पूर्ण सन्तुलन एवं तनाव के मध्य की अवस्था माना गया है। दृश्य–कलाओं के अन्तर्गत भी सामंजस्य को इसी भाँति समझा जा सकता है।

कला–रचना के अन्तर्गत सामंजस्य के स्वरूप को समझने के लिए उससे जुड़ी दो स्थितियों पर विचार करना अत्यावश्यक है–

(1) कला–तत्त्वों की पुनरावृत्ति (Repetition)

(2) कला–तत्त्वों में विरोधाभास (Contrast)

उपर्युक्त दोनों ही स्थितियाँ पूर्णतः विपरीत स्वरूप वाली हैं। कला–तत्त्वों की **"पुनरावृत्ति"** कला–रचना में समानता व सहयोग की स्थिति उत्पन्न करती है, जबकि कला–तत्त्वों में **"विरोधाभास"** होने से इसकी विपरीत स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। सामंजस्य इन दोनों विपरीतार्थक स्थितियों के मध्य सेतु का कार्य करता है, अर्थात् सामंजस्य चित्र में पुनरावृत्ति से उत्पन्न **"एकरसता"** एवं विरोधाभास से उत्पन्न **"उलझन"** व पारस्परिक

विरोध के बीच सन्तुलन का कार्य करता है। अतः कलाकृति के भाव के अनुरूप सामंजस्य की एक निश्चित सीमा तय होनी चाहिये। कलाकृति के विस्तृत अंगों में सामंजस्य को पर्याप्त महत्त्व दिया जाना चाहिये, परन्तु साथ ही कलाकृति को आकर्षक बनाने के लिए उसकी **'छोटी'** व **'परिवर्तनशील'** इकाइयों में विरोधाभास का पुट दिया जा सकता है, जो कि चित्र के सामंजस्य को कोई हानि न पहुँचा सके।

सामंजस्य का महत्त्व
(Importance of Harmony)

मानव का स्वभाव व्यवस्थाप्रिय होता है और सामान्य रुचि के अनुसार सामंजस्य को एक आवश्यक कला सिद्धान्त के रूप में माना जाता है। **कला–रचना के अन्तर्गत कलाकार अपने कथ्य को विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्ति देता है, जिसमें वह पुनरावृत्ति व विरोधाभास दोनों का समावेश करता है।** सामान्यतः कलाकार परम्परा से भिन्न व उलझनपूर्ण व जटिल संयोजनों की अपेक्षा सामंजस्यपूर्ण, परम्परानुरूप व समानुपातिक संयोजनों की रचना करता है। यही प्रवृत्ति दर्शकों में भी विद्यमान होती है, जो कलाकृति का आस्वादन करना चाहते हैं।

कलाकृति की रचना का उद्देश्य देखे गये रूपों इत्यादि की अनुकृति करना ही नहीं होता, वरन् विभिन्न तत्त्वों, रूपाकारों व विचार आदि के मध्य एक व्यवस्था बनाना भी होता है। सामंजस्य कलाकृति में उन रुचिकर सम्बन्धों को व्यवस्थित करने का कार्य करता है, जो **'सौन्दर्य'** अथवा **'आनन्द की अनुभूति'** कराते हैं। चित्र रचना में तत्त्वों की पुनरावृत्ति एकरसता को उत्पन्न करती है और विरोधाभास आकस्मिक व आक्रामक प्रतीत होता है। अतः सामंजस्य इन दोनों विशेषताओं के गुणों को मधुर सम्बन्ध में बदलकर सामंजस्यपूर्ण स्थिति बनाता है। इस दृष्टिकोण से रचना में सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

सामंजस्य के अन्तर्गत चित्र के सभी तत्त्व–रेखा, रूप, वर्ण, तान व पोत इत्यादि अपनी–अपनी भूमिका निभाते हैं जिससे सामंजस्य–व्यवस्था बनी रहे।

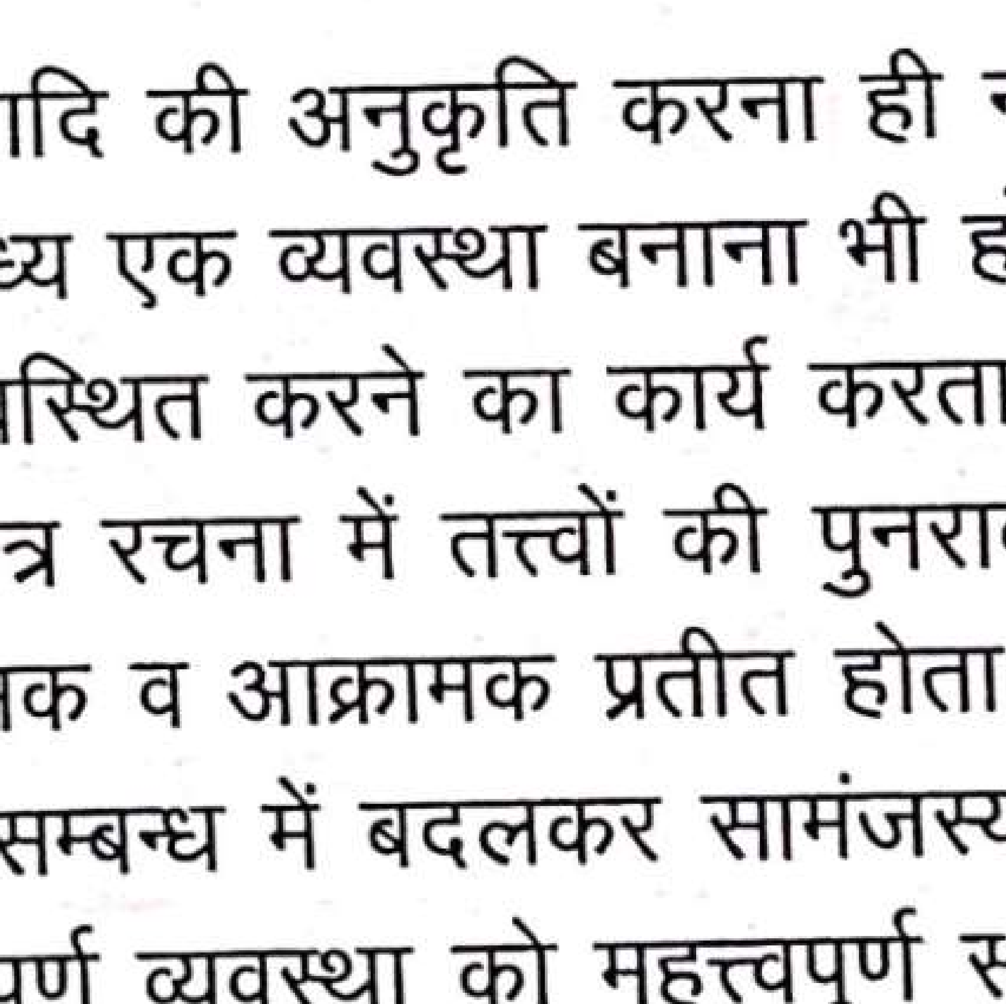

चित्र 78 क

रेखा–सामंजस्य

रेखाओं को तीन मुख्य श्रेणियों में बाँटा जा सकता है–

(1) आवृत्ति रेखायें : रचना में एक ही दिशा में गतिशील एक समान रेखायें आवृत्ति या पुनरावृत्ति का प्रभाव उत्पन्न करती हैं। *(चित्र सं. 78 क)*

(2) अवरोधक रेखायें : निरन्तर विपरीत दिशाओं की ओर जाने वाली रेखायें अवरोध उत्पन्न करती हैं। *(चित्र सं. 78 ख)*

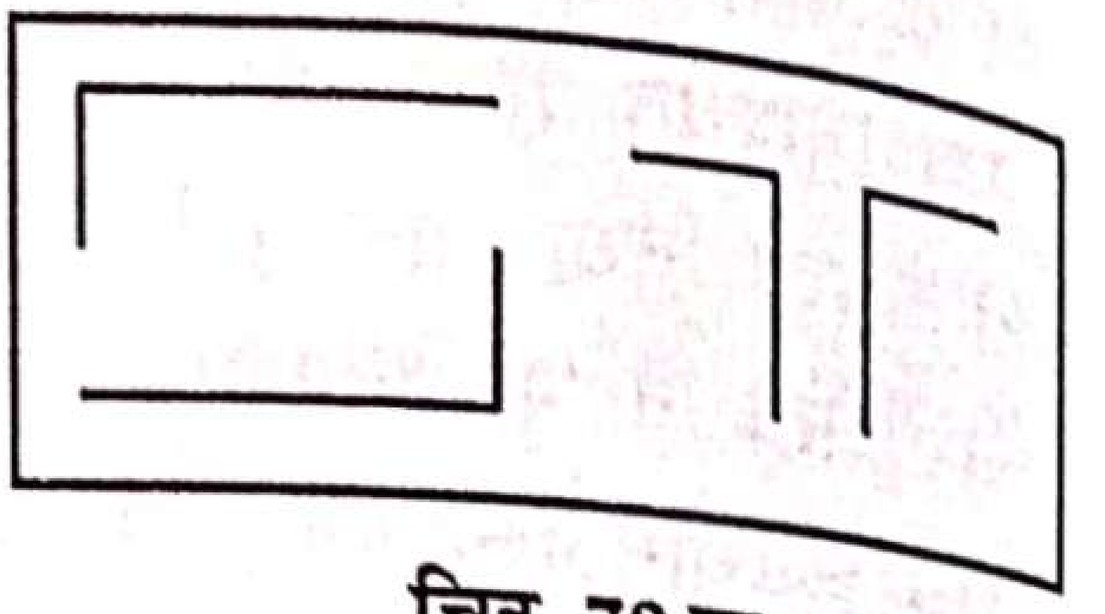
चित्र 78 ख

(3) सन्धि रेखायें : वे रेखायें जो इस गतिरोध के प्रभाव को मृदु बनाती है। *(चित्र सं. 78 ग)*

गतिरोधक रेखाओं व आवृत्ति रेखाओं को व्यवस्थित करके व परिवर्तित करके उन्हें आवश्यकतानुसार अन्य दिशाओं की ओर प्रेरित किया जाता है। इससे कलाकृति के प्रभाव में मधुरता आती है और संयोजन में आकर्षण पैदा होता है। इसी प्रकार कला–रचना में विभिन्न **"भार"** (Weight) वाली रेखाओं के प्रयोग से भी सामंजस्य प्राप्त किया जा सकता है। आवृत्ति रेखाओं, गतिरोधक रेखाओं, सन्धि रेखाओं का संयोजन आकर्षक आकृतियों को जन्म देता है।

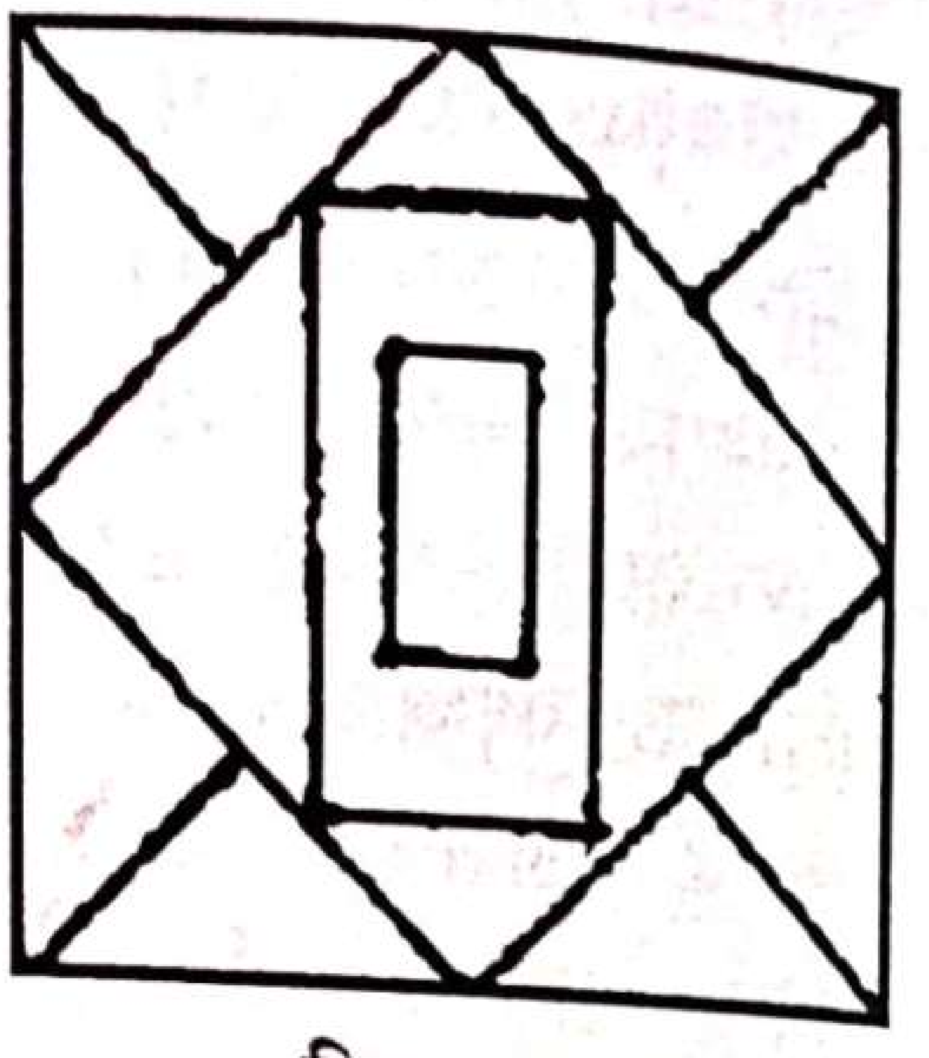
चित्र 78 ग

रूप सामंजस्य

चित्र में व्यवस्था बनाये रखने के लिए आकृति सामंजस्य भी अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक चित्र में मुख्य व सहायक रूपाकार होते हैं तथा रूपाकारों की ऐसी व्यवस्था जिसमें मुख्य व सहायक रूपाकार परस्पर पूरक का कार्य करें, तो यह सामंजस्य के अन्तर्गत आती है। इसके लिये यह आवश्यक है कि बड़ी रूपाकृतियाँ चित्रभूमि के आकार के अनुरूप व अधिक विरोधी स्वभाव की न हों। छोटे रूपाकारों में विविधता व विरोधाभास दिखाया जा सकता है। इसी प्रकार छोटे व बड़े रूपाकार परस्पर सम्बद्ध हों। अमूर्त संरचनाओं में भी प्रमुख व सहायक रूपाकारों में सामंजस्य आवश्यक होता है। *(चित्र सं. 79)*

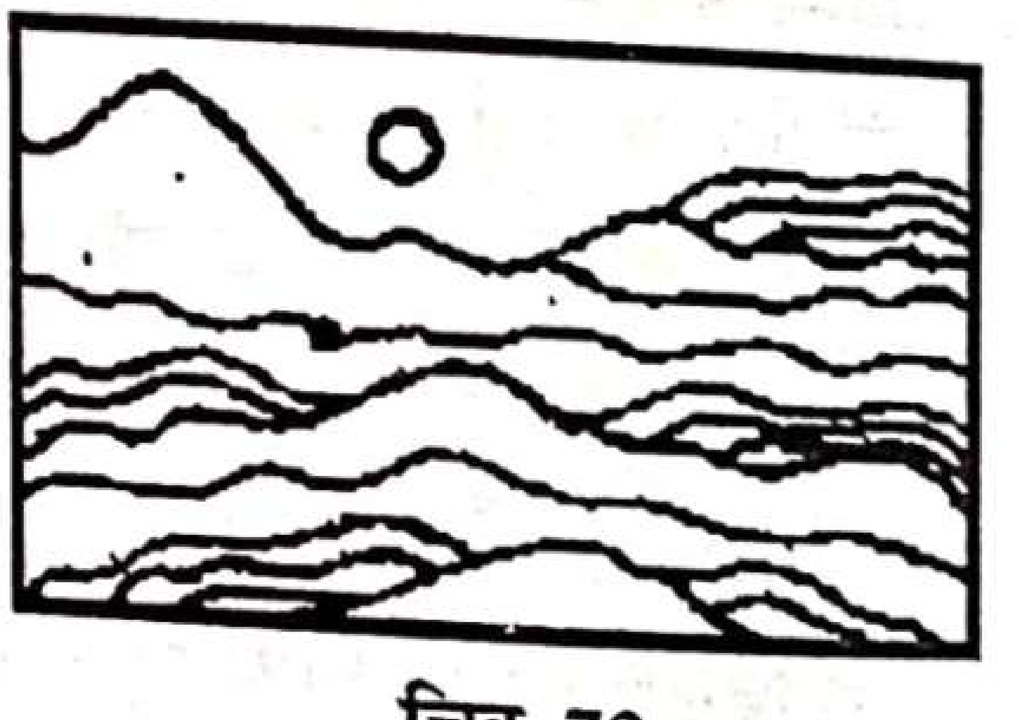
चित्र 79

पोत सामंजस्य

एक कलाकृति में पोत (Texture) के सृजन से उसके प्रभाव को द्विगुणित किया जा सकता है। प्रकृति में अनेक प्रकार के पोत उपलब्ध हैं। अतः चित्र में आकर्षण पैदा करने के लिए मोटे, चिकने, कठोर, बारीक इत्यादि विभिन्न प्रकार के पोत बनाये जा सकते हैं। परन्तु चित्र के सामंजस्य के लिये यह आवश्यक है कि केवल उन्हीं पोत का

प्रयोग किया जाये, जो एक दूसरे से मेल खाते हों। परस्पर सामंजस्य वाले पोत का चयन या सृजन कलाकृति को आकर्षक बनाता है। परन्तु कुशल चित्रकार अत्यन्त सावधानीपूर्वक उन पोत का भी प्रयोग कर सकता है, जो आपस में मेल न खाते हों। जैसे– चिकने और कठोर पोत। यद्यपि इसके लिये अत्यन्त सावधानी रखने की आवश्यकता है।

विचार सामंजस्य

कलाकृति में विचार सामंजस्य का अत्यन्त महत्त्व है। चित्र के तत्त्वों– रेखा, रूप, वर्ण, पोत आदि के मध्य सामंजस्य का महत्त्व तभी हो सकता है जब वे सभी उसमें निहित विचार के अनुरूप ढली हुई प्रयुक्त हों, प्रत्येक आकृति व तत्त्व उसी विचार को पोषित करते हों। उदाहरण के लिये– गाँव के दृश्य में सभी रूपाकृतियाँ गाँव के अनुरूप ही बनाई जायेंगी, अन्यथा विचार–सामंजस्य नहीं उत्पन्न होगा।

वर्ण सामंजस्य

चित्र में सबसे सुन्दर सामंजस्य वर्ण–सामंजस्य होता है। सामान्यतः निकटवर्ती वर्णों अथवा समान मान वाले वर्णों का प्रयोग चित्र में सामंजस्य का प्रभाव उत्पन्न करता है। परन्तु इसका ये भी तात्पर्य नहीं कि सभी रंग एक दूसरे से सम्बन्धित ही हों, वरन् उनमें एकरसता से बचने के लिये पर्याप्त विविधता भी होनी आवश्यक है। अर्थात् निकटवर्ती वर्णों के साथ पूरक अथवा विरोधी वर्णों को प्रयोग में लाया जाये तो वह सामंजस्य के साथ–साथ रोचकता में भी वृद्धि करता है। यह सामंजस्य के प्रभाव को अधिक आकर्षक बनाता है। वर्ण के मुख्यतः दो समूह होते हैं– **'उष्ण'** तथा **'शीतल'**। अतः उष्ण के साथ उष्ण वर्णों की रंगतें तथा शीतल के साथ इन्हीं वर्णों की रंगतें सामंजस्य का प्रभाव उत्पन्न करती हैं, परन्तु विविधता लाने के लिये उष्ण रंगों के साथ शीतल रंगों का तथा शीतल के साथ उष्ण रंगतों का प्रयोग करने से चित्र अधिक आकर्षक दिखाई देता है और चित्र के सामंजस्य को कोई हानि नहीं पहुँचती है, बल्कि यह उसके सामंजस्य की वृद्धि में सहायक होता है। यह कार्य किंचित सावधानीपूर्वक करना चाहिये। **सर्वाधिक सामंजस्य उत्पन्न करने वाले वर्ण–पीला व उसके सजातीय वर्ण होते हैं।** ये रंग पृष्ठभूमि के लिये भी श्रेष्ठ होते हैं।

वर्ण सामंजस्य की विधियाँ

वर्ण–सामंजस्य के लिये निम्न विधियाँ प्रयोग में लाई जा सकती हैं–

(1) रंग को धूमिल करके : किसी भी वर्ण में उसकी पूरक रंगत को मिलाने से प्राप्त होने वाली उदासीन व धूमिल रंगत तटस्थ प्रभाव देने वाली होती है। इस प्रकार रंगतें अपनी प्रखरता को खोकर आपस में सामंजस्य स्थापना कर लेती हैं।

(2) सभी वर्णों में किसी समान वर्ण के मिश्रण द्वारा : चित्र में प्रयुक्त सभी वर्णों में किसी **'एक समान वर्ण'** का मिश्रण कर देने से सामंजस्य प्राप्त किया जा सकता है। इस विधि द्वारा चित्र में विरोधी रंगों में भी सामंजस्य लाया जा सकता है। जैसे- पीले **व नीले रंग में हरे रंग के मिश्रण से सामंजस्य उत्पन्न किया जा सकता है।** अन्य रंगतों में भी इस प्रकार मिश्रण से सामंजस्य की समस्या को सुलझाया जा सकता है।

(3) पारदर्शक आवरण विधि द्वारा : किसी भी प्रकार की रंग–योजना के ऊपर एक पतले **'पारदर्शक'** वर्ण का आवरण लगा देने से सभी रंग आवरण के प्रभाव से एक सामंजस्य का प्रभाव ग्रहण कर लेते हैं। इस विधि को **"ग्लेजिंग"(Glazing)** भी कहा जाता है।

(4) धूमिल रंग की मध्यस्थता द्वारा : जब किन्हीं भी दो रंगतों के पास–पास लग होने से विरोधाभास उत्पन्न हो रहा होता है तब उनके मध्य किसी **'धूमिल रंगत'** को लगा देने से वहाँ सामंजस्य का प्रभाव आ जाता है।

(5) पोत–परिवर्तन द्वारा : चित्रित रूपाकारों एवं वर्ण की सतह पर पोत को **'खुरदरा'** तथा **'मोटा'** या **'चिकना'** आदि करके लगाने से रंगत में अन्तर आ जाता है। इसके व्यवहार से सतह पर स्वाभाविक रूप से उत्पन्न **'छाया–प्रकाश'** आदि के कारण रंगत की प्रखरता कम हो जाने से सामंजस्य–रचना सरलता से प्राप्त की जा सकती है। सामान्यतः निकटवर्ती पोत का व्यवहार उपयोगी रहता है।

उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त रेखा, वर्ण, रूपाकार तथा पोत इत्यादि में **'क्रमिक परिवर्तन'** अथवा **'अनुक्रम'** (Gradation) भी सामंजस्य प्राप्त करने की प्रमुख विधि है। कलाकृति में सामंजस्य के अनेक रूप प्राप्त होते हैं। विचार, क्रिया तथा स्वभाव की समरूपता के अतिरिक्त सामंजस्य की कुछ ऐसी स्थितियाँ भी दृष्टिगत हो जाती हैं, जो परस्पर विरोधी होने पर भी बार–बार दोहराये जाने से सामंजस्यपूर्ण मान ली जाती हैं। इन्हें हम **"स्वीकृत–सामन्जस्य"** के अन्तर्गत रखते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संयोजन के सिद्धान्तों में **"सामन्जस्य"** अपना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

OOO

प्रश्नावली

(1) सामंजस्य से क्या तात्पर्य है? चित्रण में सहयोग व सामंजस्य के आपसी सम्बन्ध का उल्लेख कीजिये।

(2) चित्रण के विभिन्न तत्त्वों में सामंजस्य क्या स्थान रखता है?

(3) वर्ण–सामंजस्य से आप क्या समझते हैं? वर्ण सामंजस्य की विभिन्न विधियों पर प्रकाश डालिये।

सन्तुलन
(Balance)

'सन्तुलन मानव जीवन का आधार है।' यह जीवन की **"गतिशीलता"** को भी आधार प्रदान करता है। इसके अभाव में हम स्थिर नहीं रह सकते हैं, और असन्तुलन **"असुरक्षा"** की भावना को जन्म देती है। मानव शरीर के सभी अंग सन्तुलित होकर ही उसे जीवन में गति प्रदान करते हैं। शरीर में दो आँखें, दो हाथ, दो पैर एवं अन्य सभी अंग मिलकर ही सन्तुलन की स्थिति उत्पन्न करते हैं। एक के भी अभाव में असन्तुलन पैदा हो जाता है। हमारे जीवन की ही भाँति दृश्य–कलाओं व अन्य कला–रूपों में भी "सन्तुलन" एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त माना जाता है। दृश्य–कलाओं में यह सन्तुलन भौतिक तुला के रूप में न होकर **"चाक्षुष–सन्तुलन" (Visual- Balance)** के रूप में देखा जाना चाहिये।

परिभाषा

कला–रचना में "सन्तुलन" वह सिद्धान्त है, जिसके अनुसार चित्र के सभी तत्त्वों के समग्र समायोजन में "पूर्ण साम्यावस्था" (Equilibrium) हो। अर्थात् सन्तुलन का कार्य रचना के तत्त्वों– रेखा, रूप, वर्ण इत्यादि को चित्र–तल पर समान रूप से व्यवस्थित करना है, जिससे चित्र–भूमि पर उनका **"चाक्षुष–भार"** (Visual Weight) सर्वत्र समान रूप से वितरित रहे। **"भार" को किसी एक ही स्थान पर केन्द्रीयकृत अथवा एकीकृत न होने देना ही सन्तुलन का "उद्देश्य" है।** यही सन्तुलन की आदर्श स्थिति कहलायेगी। *(चित्र सं. 80)*

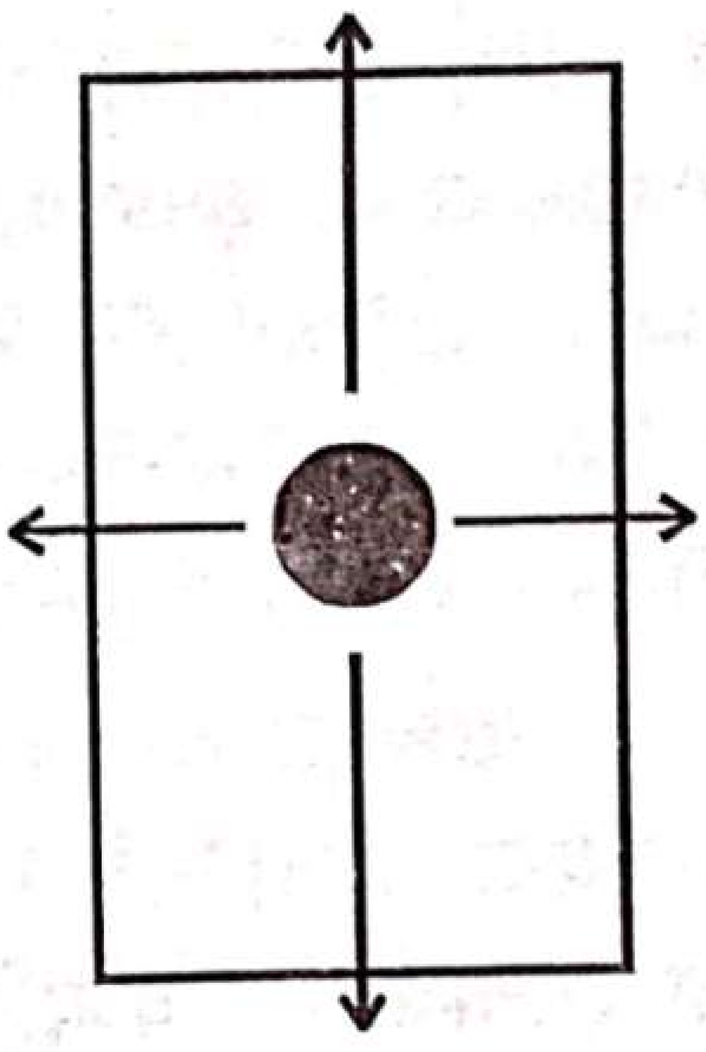

चित्र 80

सन्तुलन का स्वरूप

सन्तुलन का स्वरूप उस तुला के समान है, जिसमें केन्द्र से बराबर दूरी पर समान "भार" स्थित हो। सन्तुलन के साथ यह दृष्टिगत **"भार"** जुड़ा हुआ है और भार को भार से ही सन्तुलित किया जाता है। चित्र के मुख्य आकर्षण केन्द्र में ही भार स्थित होता है। यदि यह भार उचित प्रकार से संयोजित न किया जाये तो चित्र अनाकर्षक हो जाता है।

मनुष्य अपने चारों ओर एक **"व्यवस्था"** (Order) देखना चाहता है। कला–रचना में यह प्रवृत्ति **"सौन्दर्यात्मक–व्यवस्था"** (Aesthetic Order) से जुड़कर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाती है। सामान्य रूप में यह व्यवस्था भार के एक ही स्थान पर केन्द्रित हो जाने से गतिहीन प्रतीत होती है। अतः ऐसी **"चाक्षुष–व्यवस्था"** की रचना करना आवश्यक होता है, जिनसे समायोजित होकर उनमें जड़ता न आने पाये और कला–रचना में शक्ति व गति से संयुक्त होकर सतत् सन्तुलित स्थिति की रचना होती रहे।

कलाकृति में सन्तुलन अथवा दृष्टिगत भार की व्यवस्था को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) सममित सन्तुलन (Symmetrical Balance)

(2) असममित सन्तुलन (Asymmetrical Balance)

1. सममित सन्तुलन (Symmetrical Balance) : इस प्रकार के सन्तुलन में अन्तराल में **"समान भार"** वाली व्यवस्था की जाती है। अर्थात् अन्तराल में एक अथवा एक से अधिक कला–तत्त्वों को जो समरूप अथवा मिलते–जुलते रूप हों, को समायोजित किया जाता है। इसके अन्तर्गत रचना का एक भाग दूसरे भाग के समान ही होता है। **"शास्त्रीय स्थापत्य रचनाओं"**, **"वस्त्र एवं आभूषण"** सम्बन्धी अभिकल्पनाओं (Textile & Ornament Designs) आदि में सममित सन्तुलन का प्रयोग किया जाता है। **"ताजमहल"** इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माना जा सकता है। *(चित्र सं. 81 क, ख)*

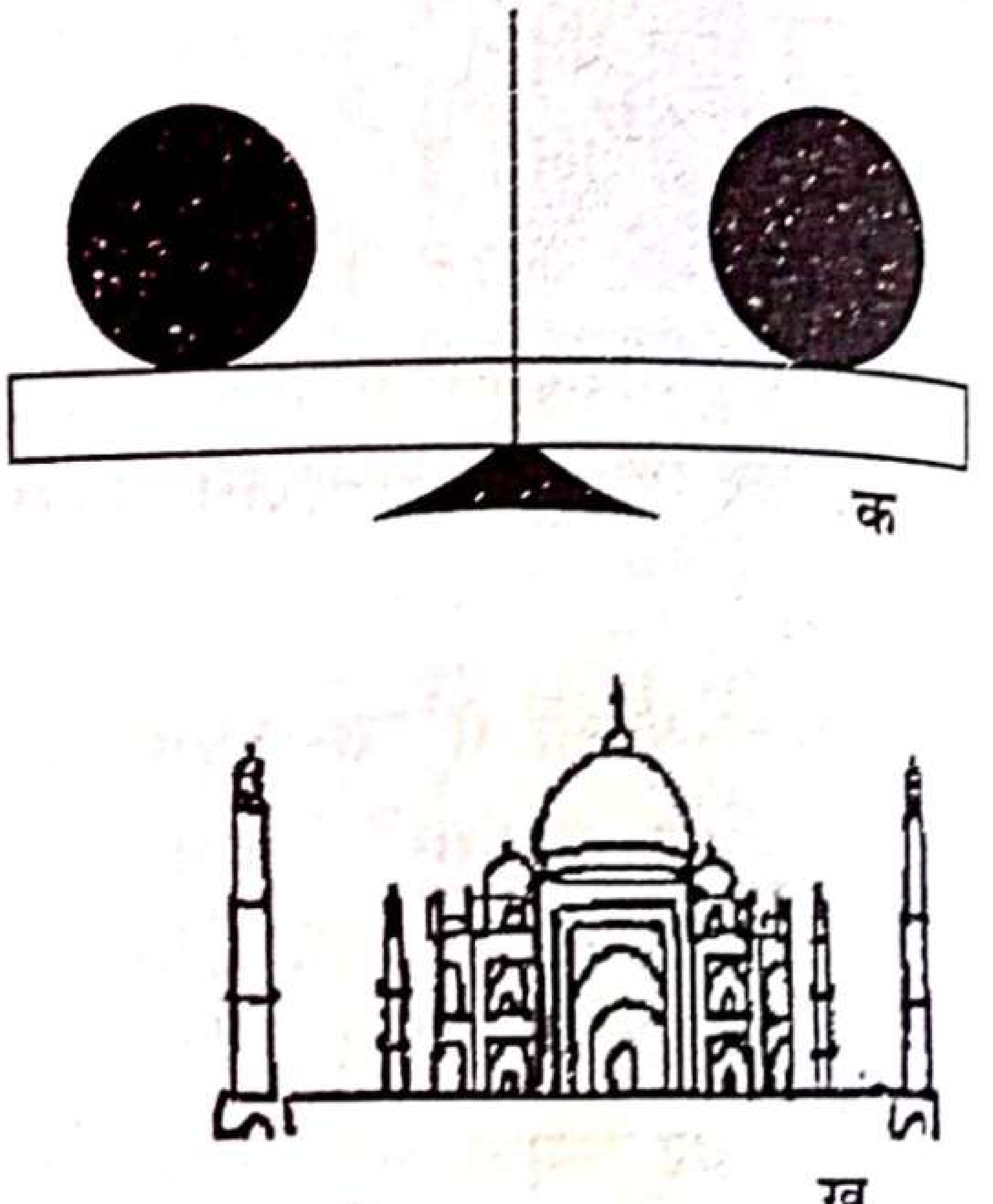

चित्र 81

सममित सन्तुलन को **"औपचारिक"** (Formal) सन्तुलन भी कहा जा सकता है। यह रचना में **गरिमा, निश्चलता, गतिहीनता व ठहराव** का प्रभाव उत्पन्न करता है। श्रेष्ठ रचनाओं में **"विश्रान्ति"** की स्थिति व विभिन्न तत्त्वों को **"बिखराव"** से बचाने के लिये इसे प्रयुक्त किया जाता है।

2. असममित सन्तुलन (Asymmetrical Balance) : रचना के अन्तर्गत कला–तत्त्वों को समान रूप से व्यवस्थित न करके उन्हें असमान रूप से अर्थात् कम या अधिक रूप से प्रयुक्त करना असममित–सन्तुलन कहलाता है। अर्थात् चित्र–भूमि के अन्तर्गत कला–तत्त्वों का समायोजन इस भाँति किया जाये कि उनका **"चाक्षुष–भार"** (Visual weight) अथवा आकर्षण असमान होते हुए भी इस प्रकार से व्यवस्थित हो कि वह सन्तुलित दिखाई दे। इस प्रकार का सन्तुलन चित्र–भूमि में **"गतिशीलता"** व **"सक्रियता"** का प्रभाव उत्पन्न करता है। अतः इसे **"अनौपचारिक" (Informal)** अथवा **"सक्रिय" (Active)** सन्तुलन भी कहा जाता है। *(चित्र सं. 82)*

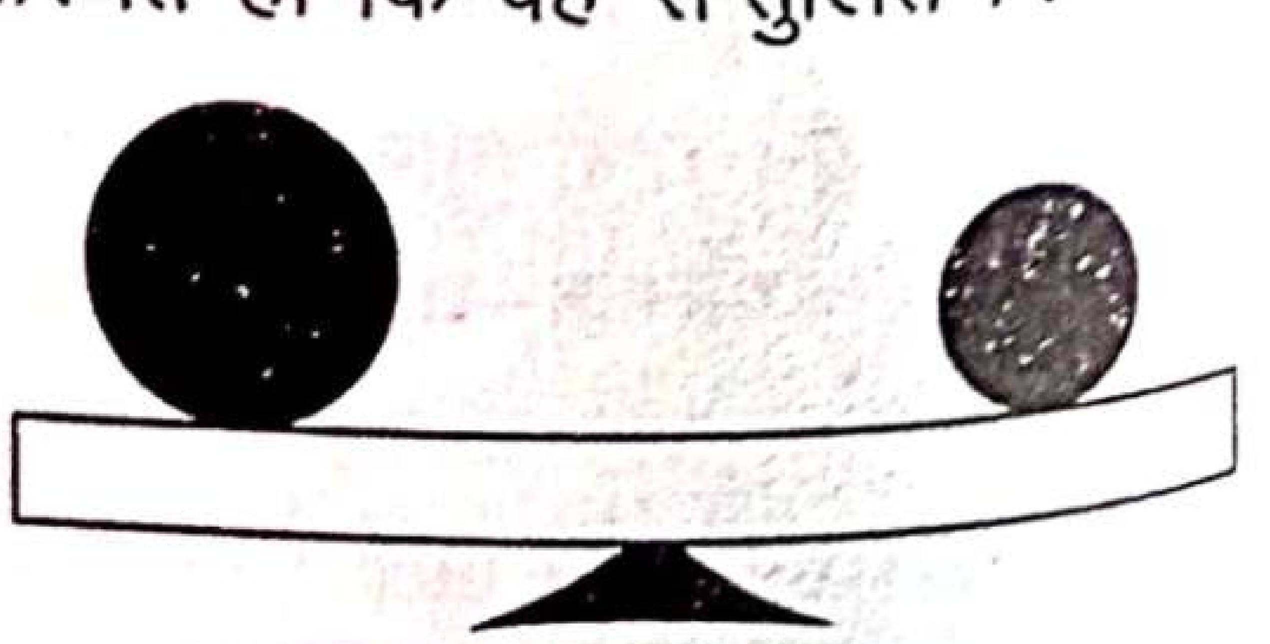

चित्र 82

रचना के अन्तर्गत 'असममित' सन्तुलन दर्शक की दृष्टि को अधिक शीघ्रता से प्रभावित करता है। इसकी प्रकृति मूलतः गतिशील होती है। परिणामतः कलाकृति के प्रति दर्शक की रुचि का विकास होता है। समकालीन कला–रचनाओं में अधिकांशतः असममित सन्तुलन ही प्रायः देखा जाता है। **"विज्ञापन कला"** में सर्वत्र यही सन्तुलन प्रयुक्त किया जाता है। समकालीन **"स्थापत्य–रचना"** तथा **"आन्तरिक–सज्जा"** (Interior-Decoration) में भी इसे प्रयोग में लाया जाता है।

कला रचना में इन दो प्रकार के सन्तुलन के अतिरिक्त भी सन्तुलन का अन्य एक प्रकार मिलता है, जिसे **"अरीय–सन्तुलन"** (Radial Balance) कहा जाता है। इसमें रचना का सन्तुलन पहिये में लगे **"अरों"** की भाँति केन्द्र से विस्तारित होकर रचना के मध्य भाग को सम्पूर्ण चित्र–भूमि में **"मण्डलाकार"** गति का प्रभाव उत्पन्न होता है। गतिशीलता की यह स्थिति सममित सन्तुलन से समन्वित होने से **"औपचारिक"** तथा असममित सन्तुलन से समन्वित होने से **"अनौपचारिक"** प्रतीत होती है। *(चित्र सं. 101)*

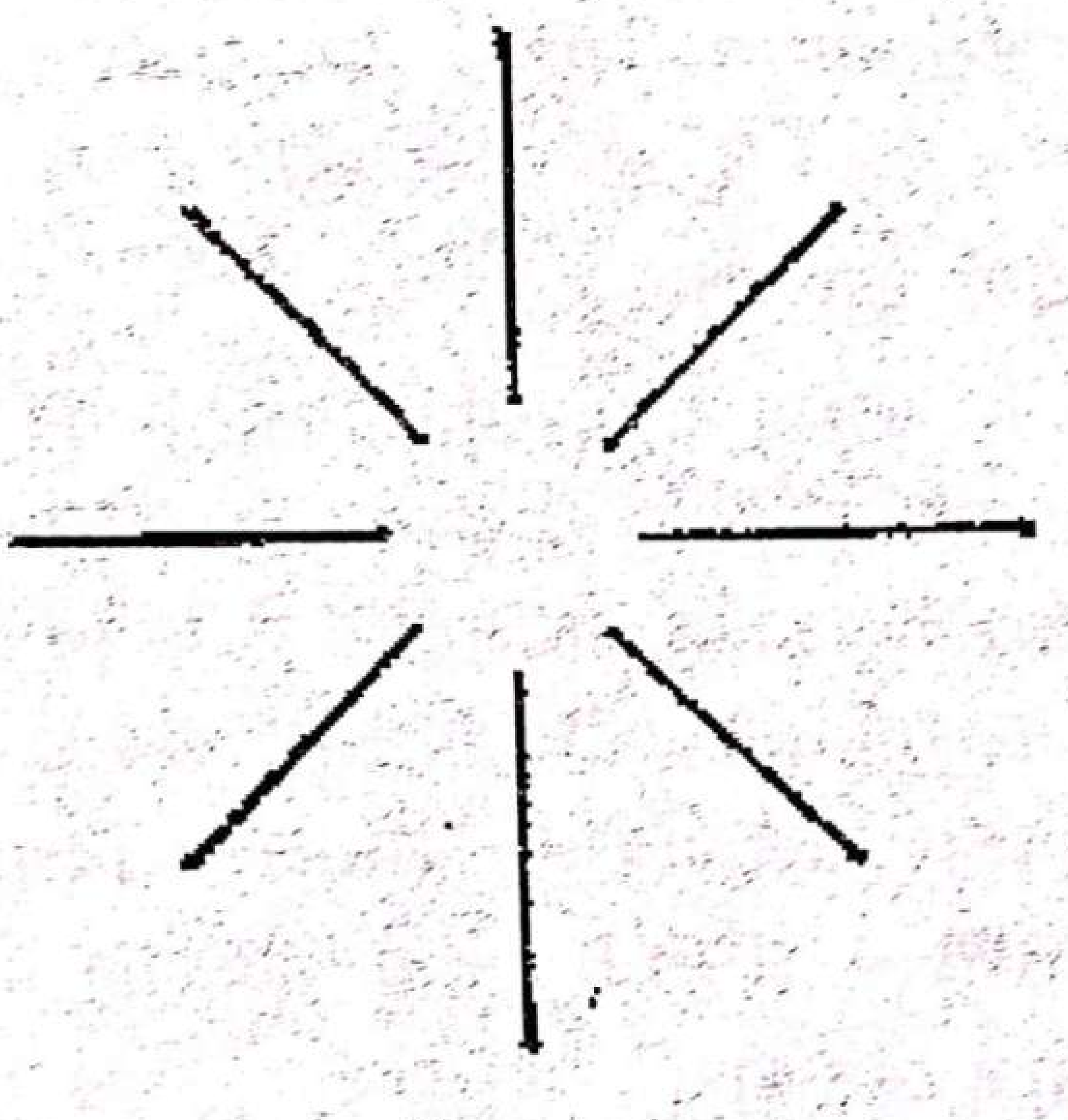

चित्र 83

सन्तुलन तथा दृष्टिगत भार

सन्तुलन के सिद्धान्त के अन्तर्गत चित्र के समस्त तत्त्वों– रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत आदि का अलग–अलग **"दृष्टिगत–भार"** होता है, जिसे समझना अत्यन्त आवश्यक है।

रेखा का भार

रेखा दिशा का **"निर्देशन"** करती है और दर्शक की दृष्टि उसका अनुसरण करती है। अतः इस निर्देशन शक्ति में ही **"रेखा का भार"** निहित होता है। रेखा की विविधता एवं उनके प्रभाव के अनुसार कलाकृति में सन्तुलन व्यवस्था की जाती है। एक ही दिशा की ओर गतिशील रेखाओं के प्रभाव को रोकने के लिये **"अवरोधक रेखाओं"** का प्रयोग किया जाता है। **"सन्धि–रेखाओं"** का प्रयोग अवरोध की स्थिति को मृदु बना देता है। *(चित्र सं. 84)*

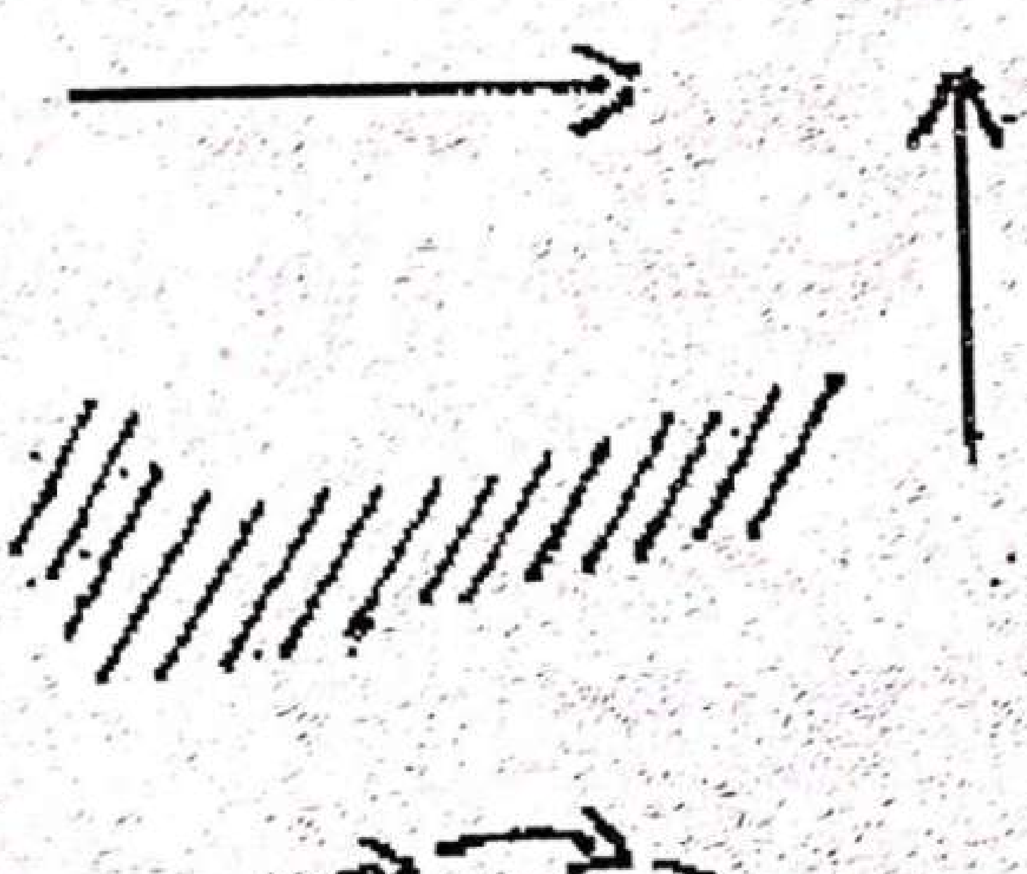

चित्र 84

आकृति का भार

रचना में आकृति का भार मुख्यतः आकार की **"विशालता"** व **"लघुपन"** पर निर्भर करता है। साथ ही सतह के पोत और सज्जा व अलंकरण की सघनता आदि भी आकृति के **"चाक्षुष–भार"** में कमी व विस्तार देते हैं। अधिक चाक्षुष–भार वाली आकृति केन्द्र के समीप होने से चित्र–भूमि में सन्तुलन बनाती है तथा **"असमान भार"** वाली आकृतियों की रचना में बड़े रूपाकार केन्द्र के निकट व छोटे रूपाकार दूर स्थित किये जाने पर सन्तुलन की स्थिति बनाते हैं। **"अलंकृत"** व **"जटिल"** आकार सपाट तल से अधिक भार रखते हैं। *(चित्र सं. 85)*

चित्र 85

वर्ण का भार

रचना के अन्तर्गत प्रयुक्त विविध वर्ण, उनके मान, रंगत, सघनता, शीतल व उष्ण प्रभावों को ध्यान में रखकर ही संतुलन स्थापित किया जा सकता है। **"उष्ण रंगों"** में आकर्षण शक्ति अधिक होने के कारण चित्र–तल पर उनका भार अधिक दिखाई देता है और **"शीतल वर्ण"** अपेक्षाकृत कम भार वाले होते हैं। अतः वर्ण–सन्तुलन के लिये बड़े आकार वाले क्षेत्रों में **"शीतल व विश्रान्ति पूर्ण रंगतों"** का व छोटे आकार–क्षेत्रों में **"उष्ण व सघनता"** वाली रंगतों का प्रयोग किया जाता है।

तान का भार

परस्पर **"विरोधी तानों"** में आकर्षण शक्ति अधिक होने से उनका भार भी अधिक होता है। जबकि **"समान तानों"** में आकर्षण शक्ति कम होने से उनका भार भी कम होता है।

आकृति सन्तुलन का आलम्ब सिद्धान्त

प्रत्येक संयोजन में एक **"अदृश्य तुला"** अपना कार्य करती रहती है। इस तुला का **"आलम्ब" (Fulcrum)** कलाकृति के केन्द्र में स्थित होता है, जिसके माध्यम से दर्शक को सन्तुलन की अनुभूति होती है। अतः आकृति सन्तुलन पर तुला के सभी नियम लागू होते हैं। ये नियम इस प्रकार हैं–

(1) **समान भार वाली आकृतियाँ** केन्द्र से समान दूरी पर रहकर सन्तुलित होती हैं। चित्रण में इस प्रकार के सन्तुलन को **"औपचारिक सन्तुलन" (Formal Balance)** कहा जाता है। *(चित्र सं. 86)*

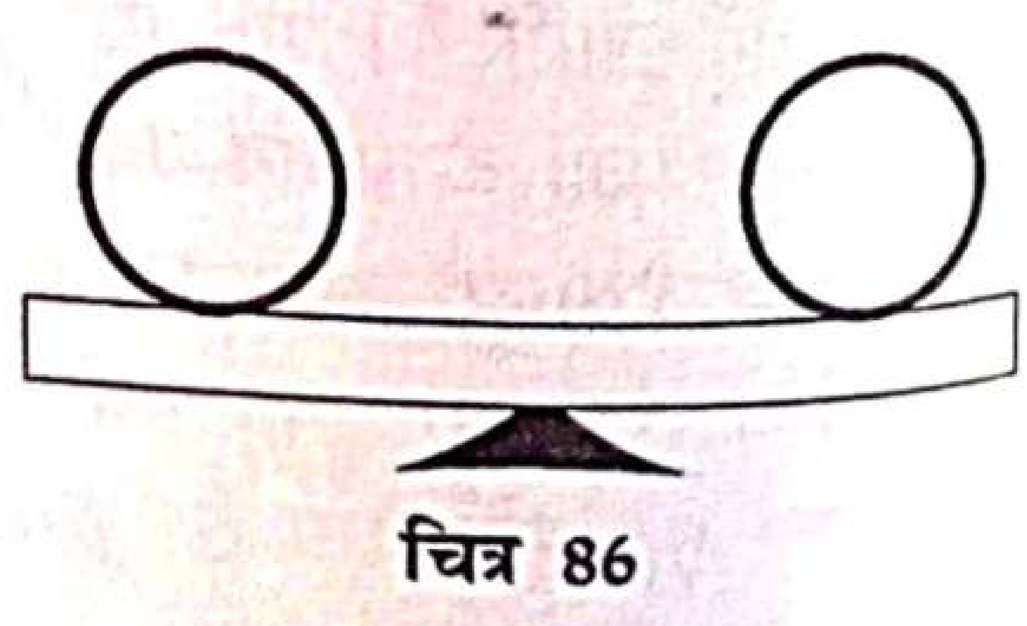

चित्र 86

(2) **असमान भार वाली आकृतियाँ** केन्द्र से विभिन्न दूरी पर रहकर सन्तुलित होती हैं। अधिक भार अथवा आकर्षण को केन्द्र के समीप रखा जाता है, तथा कम भार व कम आकर्षण वाली आकृति को केन्द्र से दूर स्थित किया जाता है। यदि कोई आकृति दूसरी आकृति से आकार में आधी है तो उसे केन्द्र से दुगुनी दूरी पर स्थित किया जाना चाहिये। इस प्रकार के सन्तुलन को **"अनौपचारिक सन्तुलन"** कहा जाता है। *(चित्र सं. 87)*

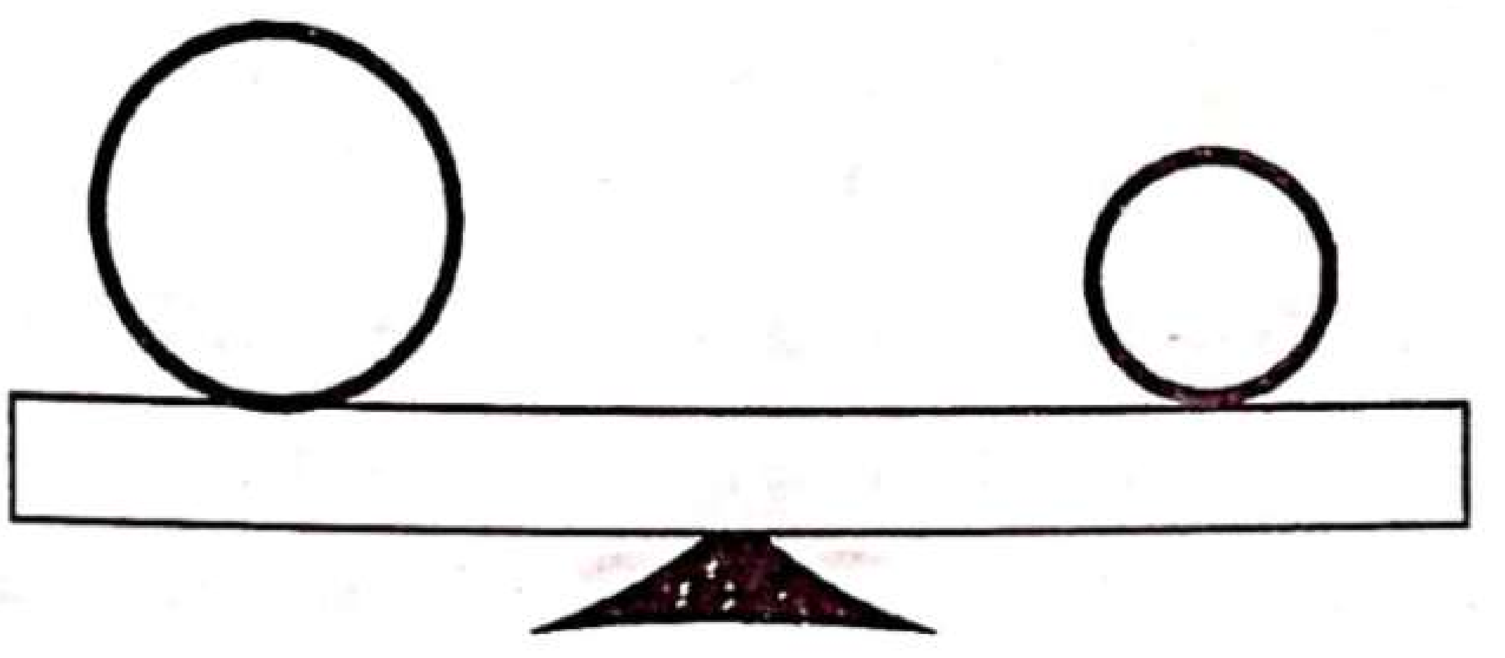

चित्र 87

(3) **बड़ी आकृति को छोटी–आकृति** के साथ सन्तुलित करने के लिये छोटी आकृति को पृष्ठभूमि में बनाया जाता है तथा बड़ी आकृति को अग्रभूमि में स्थापित किया जाता है। इससे चित्र में **"परिप्रेक्ष्य" (Perspective)** दिखाई देता है और सन्तुलन स्थापित हो जाता है। *(चित्र सं. 88)*

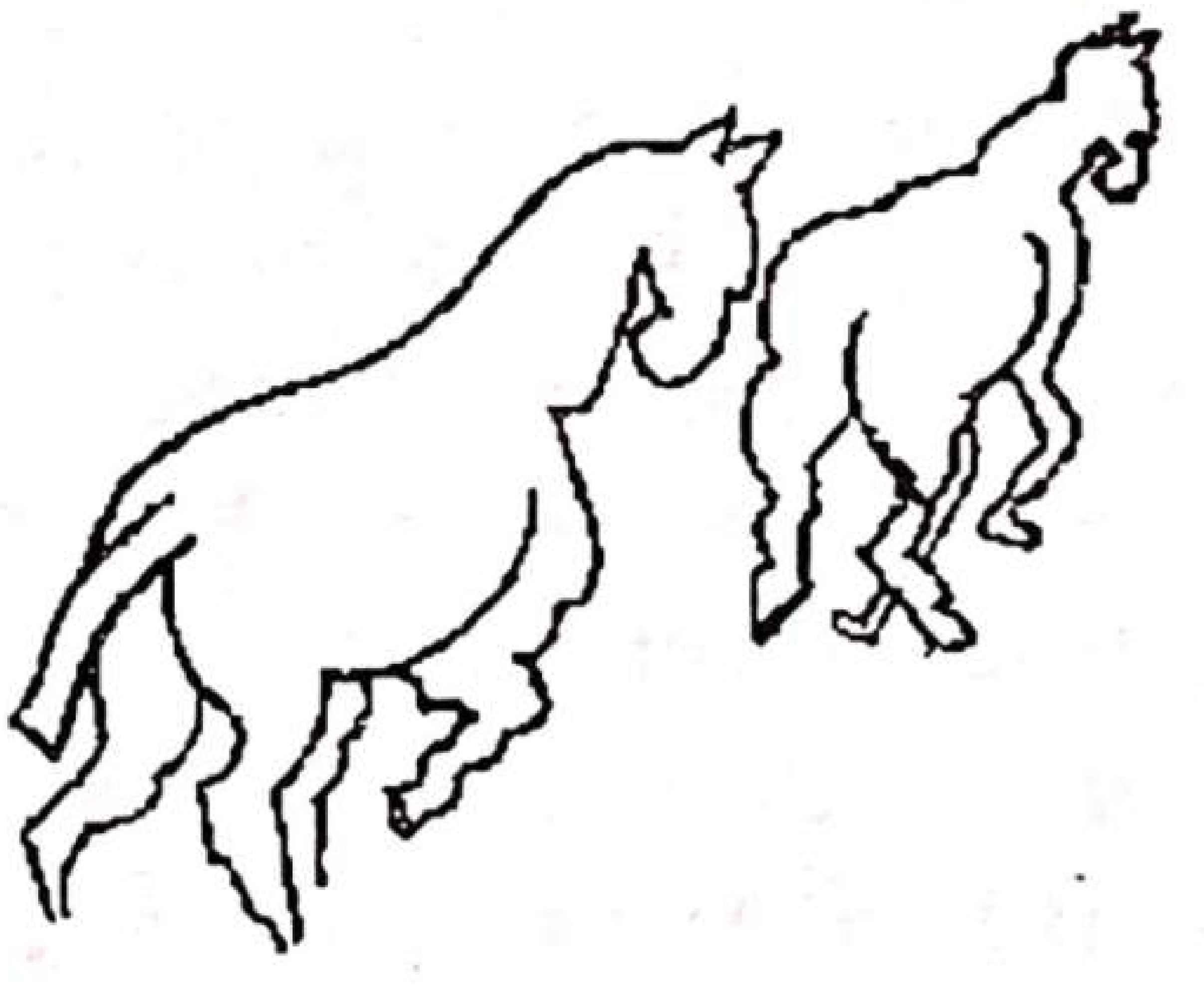

चित्र 88

वर्ण–सन्तुलन
(Colour Balance)

संयोजन के अन्तर्गत **वर्ण–सन्तुलन** का अपना एक विशेष महत्त्व है और **"सुनियोजित रंग–संयोजन ही संतुलन का सार है।"** अतः वर्ण–सन्तुलन स्थापित करने के लिये निम्न प्रविधियाँ अपनाई जा सकती हैं–

1. विस्तार–सिद्धान्त (Law of Areas) : संयोजन के अन्तर्गत सन्तुलन–स्थापना के लिये साधारणतया **"विस्तार–सिद्धान्त"** का प्रयोग किया जाता है। इस नियम के अनुसार– रंगत के बड़े आकार क्षेत्र का प्रभाव **"शांत"** व छोटे क्षेत्रों में **"विरोधाभास"** का प्रभाव रखा जाना चाहिये। इसके लिये शीत व उष्ण वर्णों के प्रयोग को ध्यान में रखा जाना चाहिये। **"विस्तृत क्षेत्रों में शांत रंगतें"** तथा **"लघु क्षेत्रों में उष्ण रंगतों"** के प्रयोग से यह प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। रंगत, तान अथवा सघनता के आधार पर शान्त व उष्ण वर्णों का यह विरोधाभास उत्पन्न किया जा सकता है।'

2. परिगामी आवृत्ति सिद्धान्त (Crossing- Colours or Repetition of colours) : वर्ण सन्तुलन का एक अन्य सिद्धान्त **"परिगामी–वर्ण" (Crossing Colours)** अथवा **"रंगावृत्ति" (Repetition of Colours)** है अर्थात् **वर्ण को समस्त चित्र–फलक पर दुहराकर लगाना।** इससे वर्ण तथा तान का सन्तुलन स्थापित होता है और किसी भी वर्ण का भार एक ही स्थान पर केन्द्रित न होकर चित्र–फलक पर समान रूप से बँट जाता है। जिस रंग को मुख्य आकर्षण केन्द्र में लगाया गया हो, उसे अन्य छोटे आकारों में लगाने से चित्र में शान्ति का भाव पैदा होता है। वर्ण वैज्ञानिक **"मूनसैल" (Munsell)** के अनुसार– एक ही **'तान'** तथा **'रंगत'** वाले वर्ण एक ही **"मान"** के होने से **"आकर्षण"** शक्ति में भी एक समान होते हैं। अतः ऐसे वर्ण आपस में आसानी से सन्तुलन स्थापित कर लेते हैं। इनके साथ **"अधिक मान"** व **"रंगत"** वाले वर्णों का सन्तुलन करने के लिये उनकी रंगत की मात्रा कम कर देनी चाहिये और **"कम मान"** एवं रंगत वाले वर्ण की मात्रा बढ़ा देनी चाहिये।

इसी प्रकार एक सा रंग अधिक देर तक देखते रहने से रंग की अनुभूति करने वाली **"सूक्ष्म पेशियों"** में भी थकान का अनुभव होने लगता है। अतः इस समस्या का समाधान **"पूरक रंग"** के प्रयोग से सरलतापूर्वक किया जा सकता है। **"पूरक रंग"** से शक्तिशाली **"विरोधाभास"** उत्पन्न होता है और विरोधी वर्ण का लघु आकारों में शुद्ध प्रयोग करने से सन्तुलन उत्पन्न होता है।

अतः सन्तुलन चित्र रचना की मूल आवश्यकता है और कला–रचना का प्रमुख सिद्धान्त है। चित्र रचना में प्रयुक्त समस्त तत्त्वों के समग्र समायोजन को ही "सन्तुलन" कहा जाता है।

OOO

प्रश्नावली

(1) सन्तुलन और सामंजस्य का आपस में क्या सम्बन्ध है? उदाहरण सहित समझाइये।

(2) सन्तुलन को "दृष्टिगत–भार" के सन्दर्भ में उदाहरण सहित समझाइये।

(3) आकृति सन्तुलन के आलम्ब–सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये। चित्र रचना में इसका प्रयोग किस प्रकार होता है?

(4) वर्ण–सन्तुलन से आप क्या समझते हैं? इसके लिये कौन सी विधियाँ अपनाई जाती हैं?

(5) सन्तुलन से आप क्या समझते हैं? चित्र रचना में इसकी आवश्यकता समझाइये।

प्रभाविता
(Dominance)

कला रचना में "प्रभाविता" का सिद्धान्त संयोजन के "लक्ष्य" तथा उसकी "क्रमबद्धता" को प्रदर्शित करता है। मूल–विचार को रचना–प्रक्रिया में अन्य सहायक विचार तथा स्थितियों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था देना **"प्रभाविता"** के अन्तर्गत आता है। कलाकृति का सम्पूर्ण आकर्षण केन्द्र अथवा मुख्य विचार में केन्द्रित होता है। अतः कलाकृति के केन्द्रीय विचार को प्रमुखता देना, प्रमुख व महत्त्वपूर्ण आकृतियों की ओर दृष्टि को निर्देशित करना तथा विरोधाभास द्वारा आकर्षण में वृद्धि करना प्रभाविता के अन्तर्गत स्थान रखता है।

परिभाषा

चित्र में **"प्रभाविता"** से तात्पर्य है– **"दृष्टि का महत्त्वपूर्ण तत्त्व पर सर्वप्रथम जाना"** तत्पश्चात् चित्र के अन्य कम महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर क्रमानुसार जाना। चित्र–रचना में **"दृष्टि प्रभाव"** को महत्त्व देना प्रभाविता के सिद्धान्त के अन्तर्गत आता है।

प्रत्येक रचना में एक से अधिक तत्त्वों का होना स्वाभाविक है, परन्तु वे सब एक ही प्रमुख विचार को पोषित कर रहे हों यह अत्यन्त आवश्यक है। अतः प्रत्येक सफल कलाकृति में एक ही **"आकर्षण–केन्द्र"** होना चाहिये। जो तत्त्व **"दृष्टि"** को इस केन्द्र की ओर इंगित करें वे ही श्रेष्ठ हैं व अन्य तत्त्वों को , जो दृष्टि को केन्द्र से विमुख करें, उन्हें गौण कर देना चाहिये। उदाहरण के लिये– मानवाकृति में **"मुख"** तथा आकृति समूह के अन्तर्गत **"प्रमुख आकृति"**। अजंता के चित्र **"बोधिसत्व–पद्मपाणि"** जहाँ आकृति समूह में प्रमुख आकृति बोधिसत्व की है तथा अन्य आकृतियों को गौण कर दिया गया है, प्रभाविता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है। *(चित्र सं. 89)*

चित्र 89 : बोधिसत्व पद्मपाणि जन-समूह के बीच

उद्देश्य

प्रभाविता के सिद्धान्त के तीन मुख्य उद्देश्य हैं–

(1) एकरसता को समाप्त करना तथा विविधता द्वारा आकर्षण में वृद्धि करना।

(2) चित्रित आकृतियों के रूप को **"सहजता"** प्रदान करना, क्योंकि दृष्टि सदैव महत्त्वपूर्ण आकृतियों की ओर केन्द्रित रहती है।

(3) **मुख्य विचार** को अभिव्यक्त करने वाले तत्त्वों को प्रभाविता प्रदान कर चित्र में सहयोग भाव उत्पन्न करना।

चित्रण में प्रभाविता प्रदान करने वाले तत्त्व **"विषय–वस्तु की अनुरूपता"** और **"साधारणीकरण" (Simplification)** पर विशेष बल देते हैं। इसके उदाहरण भारतीय लघु–चित्रण शैलियों व भित्ति–चित्रों में सरलतापूर्वक देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिये बाघ गुफा में नर्तक समूह में **"नर्तकी"** का चित्रण। इसी प्रकार प्रभाविता के सिद्धान्त के साथ **"पृष्ठभूमि"** का चित्रण जुड़ा हुआ है। पृष्ठभूमि को मुख्य आकृति से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं बनाया जाना चाहिये। *(चित्र सं. 90)*

चित्र 90 : बाघ गुफा में नर्तकी व नर्तक दल

प्रभाविता सृजन–विधि

चित्रण में अनेक विधियों के प्रयोग से प्रभाविता को उत्पन्न किया जा सकता है–

1. आकृतियों का उचित स्थान पर अंकन तथा उनका समूहीकरण (By Proper Spacing and Grouping of Objects) : प्रभाविता की स्थापना के लिये रिक्त स्थान अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है। आकृति को यदि समान आकृतियों के साथ समूह में बनाया जाये तो वह महत्त्वहीन होकर समूह में खो जायेगी, परन्तु यदि आकृति के चारों ओर **'रिक्त स्थान'** छोड़कर समूह का अंकन किया जाये तो वही समूह आकृति के प्रभाव को बढ़ा देगा। *(चित्र सं. 91)*

चित्र 91

2. रंगों का विरोधाभास उत्पन्न करके (By creating a contrast in colour) : किसी भी आकृति को प्रभाविता प्रदान करने के लिये आकृति को ऐसी पृष्ठभूमि पर अंकित किया जाये कि जिससे विरोधाभास उत्पन्न हो सके। मानव–दृष्टि रंगों के विरोधाभास व छाया–प्रकाश से उत्पन्न विरोधाभास से अधिक आकर्षित होती है। इसके लिये **'पुनरावृत्ति'** (Repetition), **'अनुक्रम'** (Gradation) **प्रमुख रूपाकार की विशालता, वर्ण–मान** एवं **सघनता की उच्चता** आदि महत्त्वपूर्ण बातों का ध्यान रखा जाता है। भारतीय लघु–चित्रों में प्रभाविता लाने के लिये ऐसे प्रयोग किये गये हैं। *(चित्र सं. 92)*

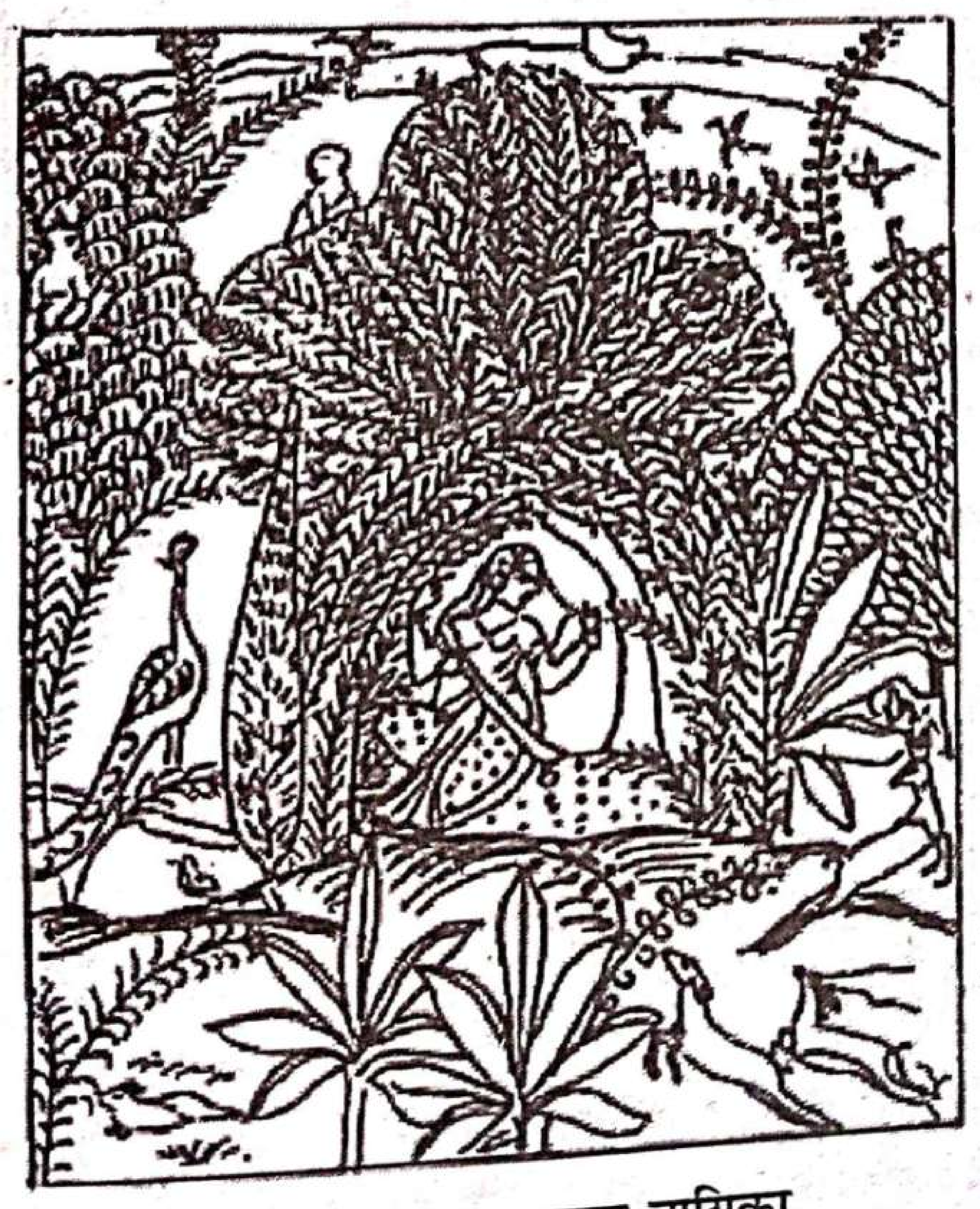

चित्र 92 : वासक-सज्जा नायिका

3. सज्जा का प्रयोग (To Apply Decoration) : साधारणतः रिक्त स्थान (Blank Space) की अपेक्षा अलंकरण युक्त स्थान अधिक "चाक्षुष–भार" (Visual Weight) रखता है। अतः उसका आकर्षण भी अधिक होता है। अतः मुख्य आकृति को अलंकृत करने से उसे प्रभाविता प्राप्त होती है। अत्यधिक अलंकरण अनाकर्षक भी हो सकता है। अतः अलंकरण सदैव साधारण और आवश्यकता के अनुरूप ही होना चाहिये। कभी–कभी पूर्ण स्थान को अलंकृत करने के स्थान पर कुछ स्थान रिक्त छोड़ दिया जाये तो भी वह प्रभाविता में वृद्धि करता है। इसी के साथ अलंकरण तथा आकार का भी परस्पर सम्बन्ध होना चाहिये। अजंता में चित्रित **"नारी आकृतियाँ"** इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कही जा सकती हैं। *(चित्र सं. 93)*

4. आकृतियों के पीछे पर्याप्त खाली स्थान छोड़ना (To leave blank space behind the form) : चित्र में एक समय में दर्शक बहुत सी आकृतियों को नहीं देख सकता है। अतः चित्रण में उतनी ही आकृतियों की संख्या होनी चाहिये, जितनी आवश्यकता है। अतः आकृतियों की संख्या कम तथा इनके पीछे पर्याप्त खाली स्थान छोड़ा जाये तो उन्हें स्वतः ही प्रभाविता प्राप्त हो जाती है। भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला में महापुरुषों की मुखाकृति के पीछे **"ओज–मण्डल"** का सृजन कर उन्हें प्रभाविता प्रदान करने की परम्परा सदैव से ही रही है। *(चित्र सं. 94)*

5. रेखाओं, आकारों तथा आकृतियों का विरोधाभास उत्पन्न करना (To Create Contrast of Lines, Forms and Figures) : इस विधि का प्रयोग अजंता के चित्रों में बहुतायत से

चित्र 93 : प्रजावती देवी, अजंता

किया गया है। इसके अनुसार– सहायक आकृतियों की तुलना में प्रमुख आकृति को अधिक विवरण व अलंकरण युक्त बना कर तथा अनुपात में अधिक बड़ा बनाकर अन्य आकृतियों से अलग प्रभाविता प्रदान की जाती है। अजंता के चित्र **"बोधिसत्व–पद्मपाणि"** तथा **"माता–पुत्र"** आदि चित्र इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कहे जा सकते हैं। *(चित्र सं. 95)*

चित्र 94 : बुद्ध-मुख

चित्र 95 : माता-पुत्र का चित्र, अजंता

चित्र तल पर आकर्षण केन्द्र

जिस प्रकार चित्र–भूमि का विभाजन उचित प्रकार से होना चाहिये, उसी प्रकार चित्र–तल पर **"मुख्य आकर्षण केन्द्र"** का भी उचित स्थापन किया जाना चाहिये, क्योंकि आकृति के उचित स्थापन का भी प्रभाविता पर प्रभाव पड़ता है। कलाकृति का मध्य स्थल उसका **"यान्त्रिक केन्द्र"** होता है, जो कलात्मक दृष्टि से आकर्षक नहीं होता है। किसी भी आकृति को मध्य–बिन्दु में बनाने से उसके चारों ओर समान स्थान छूटने से गतिहीनता और दृष्टि को गति प्रदान करने के लिये आकर्षण केन्द्र को कलाकृति के केन्द्र से कुछ हट कर बनाना चाहिये। अतः कलाकृति का **"नन्दतिक–केन्द्र"**, यान्त्रिक केन्द्र से भिन्न होता है। प्रायः नन्दतिक केन्द्र सृजन के लिये **'यूक्लिड'** के **"स्वर्णिम आयत सिद्धान्त"** का पालन किया जाता है। इस आधार पर चित्र–तल अनेक विभागों में बँट जाता है।

'कर्ण–पद्धति' के द्वारा मध्य–बिन्दु से हटकर लम्बवत् तथा क्षितिज–रेखा अंकित करने पर उनके **'कटान–बिन्दु'** से रेखा अंकित कर विभाजन किया जाता है। इस पद्धति के आधार पर मुख्य व गौण आकृतियों का चित्रण सुखद प्रभाविता का सृजन करता है। *(चित्र सं 96)*

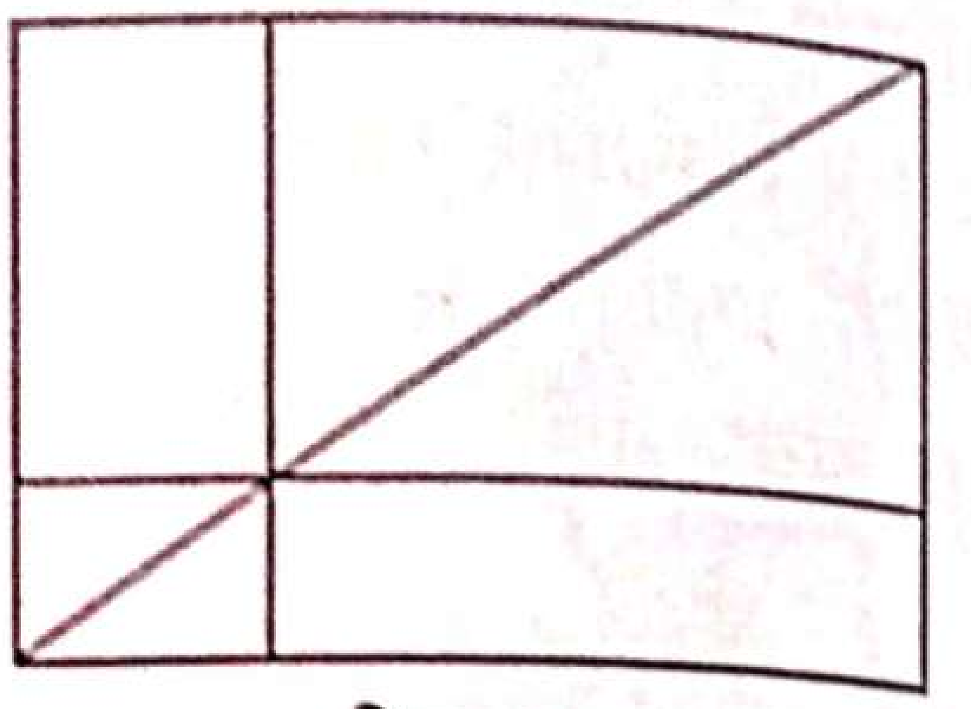

चित्र 96

निष्कर्ष

अतः प्रभाविता भी संयोजन के सिद्धान्तों में अपना विशेष स्थान रखती है। इसकी सहायता से कलाकृति के प्रमुख आकर्षण केन्द्र का सृजन किया जाता है। **प्रमुख तत्त्वों को अधिक स्पष्टता देने के लिये पुनरावृत्ति, अनुक्रम रूपाकारों की विशालता, वर्णमान एवं सघनता की उच्च स्थितियाँ आदि को प्रयोग में लाया जाता है।** अतः कलाकृति में प्रभाविता के सिद्धान्त का बहुत महत्त्व है।

OOO

प्रश्नावली

(1) प्रभाविता के सिद्धान्त को परिभाषित कीजिये एवं चित्रकला में उसके उद्देश्य निर्धारित कीजिये।

(2) वे कौन सी विधियाँ हैं, जो चित्रण में प्रमुख आकर्षण केन्द्र को प्रभाविता प्रदान करने के लिये अपनाई जाती हैं ? समझाकर लिखिये।

(3) प्रभाविता व आकर्षण केन्द्र के परस्पर सम्बन्ध को समझाकर लिखिये।

प्रवाह
(Rhythm)

"प्रवाह" अथवा "गति" मानव जीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी पदार्थ की चेतना उसके गतिशील होने पर ही निर्भर करती है। इसे "पदार्थों में अन्तर्निहित शक्ति" के रूप में भी देखा जा सकता है। गति के अवरुद्ध होने पर मनुष्य या पदार्थ प्राणहीन हो जाते हैं। अतः गति ही जीवन है। एक नदी के प्रवाह और उसकी गतिशीलता में ही उसका जीवन है। अतः गति की शक्ति को इससे सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। गति अथवा प्रवाह की यह शक्ति कला रचना–प्रक्रिया में भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। विषय, साधन, शैली, रचना–प्रक्रिया इत्यादि के भिन्न होने पर भी उन्हें गति–युक्त करना प्रत्येक श्रेष्ठ कलाकृति का उद्देश्य होता है। सम्भवतः **प्राचीन भारतीय साहित्य में चेतन व सजीव आकृतियों का अंकन चित्र में अनिवार्य माना गया है।**

परिभाषा

प्रवाह या गति से तात्पर्य है– **चित्र–धरातल पर दृष्टि का अबाध रूप से गति–युक्त होना।** अर्थात् दृष्टि एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्वतन्त्रतापूर्वक व आसानी से विचरण करती है तथा नेत्रों को किसी प्रकार का कष्ट या उलझन नहीं होती है। यह प्रवाह चित्र के सभी तत्त्व– रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत आदि मिलकर करते हैं। इस प्रकार कलाकृति के सन्दर्भ में **"गति"** रचना–तत्त्वों की विशिष्ट एवं सुनियोजित स्थिति की द्योतक है। ये सभी तत्त्व मिलकर अन्तराल में एक निश्चित **"दृष्टिपथ"** का निर्माण करते हैं, जो दर्शक की दृष्टि को निर्देशित दृष्टिपथ के अनुरूप **"गतियुक्त"** करते हैं। यही स्थिति **"गति"** कहलाती है। **"लय", "प्रवाह"** या **"निरन्तरता"** आदि को गति के अर्थ में प्रयोग किया जाता है।

रिक्त स्थान में गति नहीं होती है। परन्तु ज्यों ही हम उसमें कोई आकार बनाते हैं हमारी दृष्टि वहीं ठहर जाती है। अतः अन्य आकार भी बना देने से दृष्टि को गति प्राप्त होती है। **"गति"** शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में लिया जाना चाहिये और संयोजन के सिद्धान्तों के अन्तर्गत यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। *(चित्र सं. 97 क, ख, ग, घ)*

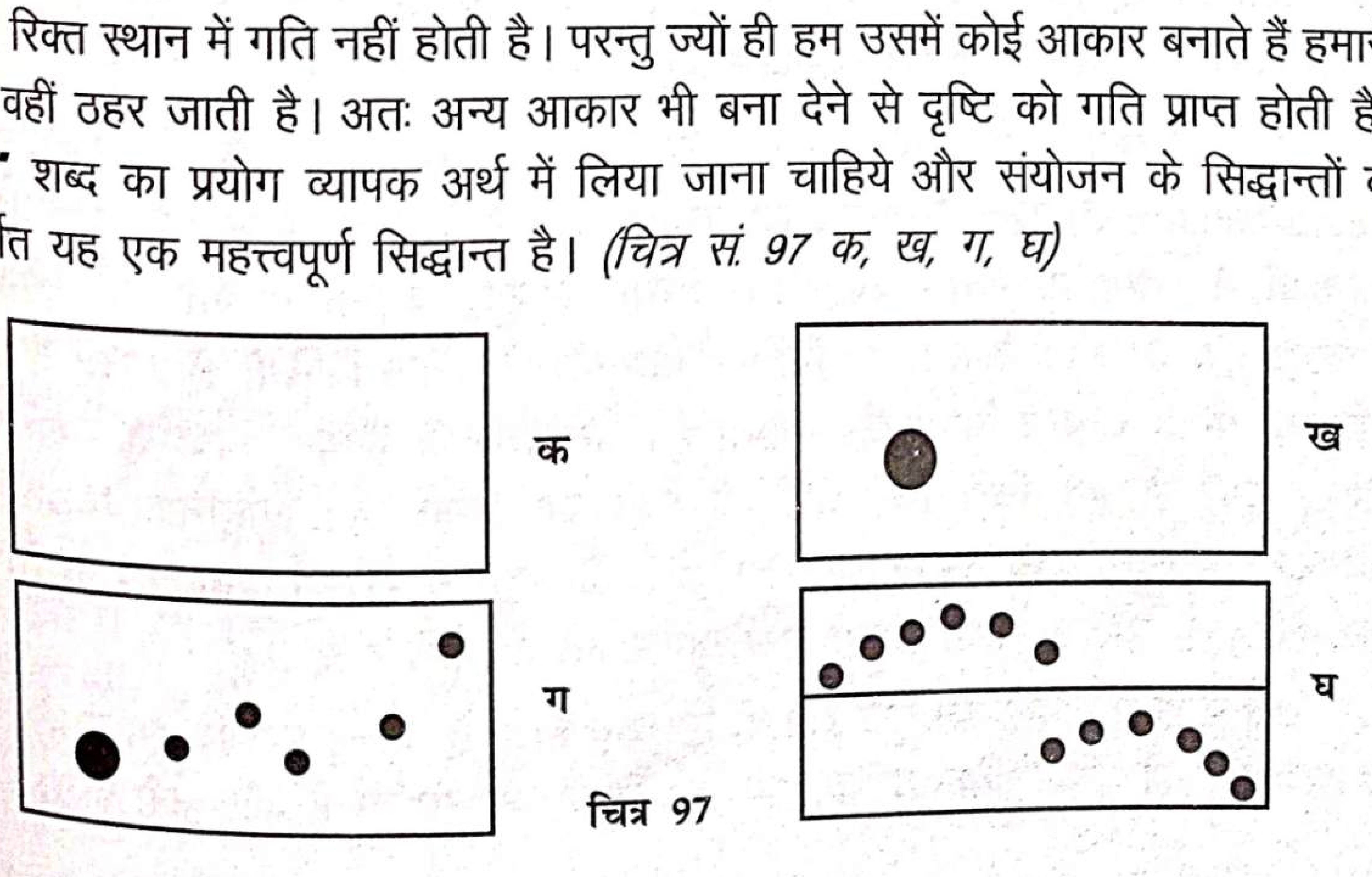

चित्र 97

गति का स्वरूप

मानव जीवन एवं प्रकृति में गति की उपस्थिति सर्वत्र ही दिखाई देती है। मनुष्य का चलना, उठना, बैठना, दौड़ना, साँस लेना, प्रकृति में मौसम के परिवर्तन और अन्य परिवर्तन, चन्द्रमा के आकारों का परिवर्तन समुद्र की गति व उसका उतार–चढ़ाव, पशु–पक्षियों की बोलियाँ आदि सभी गति के स्वरूप हैं। गति व लय की उपस्थिति सभी ललित कलाओं में समान रूप से दिखाई देती है। संगीत व काव्य में स्वरों एवं शब्दों का लयात्मक प्रयोग, नृत्य में शरीर का लयात्मक संचालन, स्थापत्य, मूर्ति व चित्रकला में लयात्मक रूपाकारों, वर्ण–संयोजन आदि तत्त्वों के माध्यम से अन्तराल में क्रियाशीलता का दिग्दर्शन होता है। चित्र में संगीत की लहरियों की भाँति रंगों व रेखाओं का लयात्मक संयोजन मिलता है जिससे प्रेक्षक की आँख को गति प्राप्त होती है। रूपप्रद कलाओं में गति के स्वरूप को समझने के लिये **'प्रकृति एवं कला'** में अन्तर्निहित गति को समझना आवश्यक है। स्वरूप की दृष्टि से यह दो भागों में विभक्त की जा सकती है–

(1) सहज गति (Natural)

(2) प्रेरित गति (Induced)

प्रकृति की अन्तर्निहित गतियाँ सहज व स्वतः उत्पन्न होती हैं। जबकि कलाकृति मानव निर्मित होती है। अतः उसमें गति व लय को यत्नपूर्वक तथा विचारपूर्वक उत्पन्न किया जाता है। कलाकृति में रचे गये रूपाकार वस्तुतः स्वयं गतिशील नहीं होते हैं, वरन् अन्तराल में की गई रूपाकारों, रेखाओं अथवा वर्णों की निश्चित व्यवस्था एक दृष्टिपथ का निर्माण करती है और उसी दृष्टिपथ पर गतियुक्त होकर हमारी दृष्टि को गति प्राप्त होती है। अतः स्थिर कलाकृति में यह गतिशीलता वस्तुतः **"गति का आरोपण"** है। इस प्रकार स्थिर कला–स्वरूपों में गति का प्रभाव कलाकार की कुशलता पर ही निर्भर करता है।

गति के स्वरूप को **'प्रतिरूपात्मक'** (Representational) एवं **'रूप–निरपेक्ष'** (Non-Representational) दोनों ही प्रकार की कलाकृतियों में देखा जा सकता है। रूप–निरपेक्ष रचनाओं में विषय के स्थान पर रचना–तत्त्वों के शुद्ध प्रयोगों में गति के स्वरूप को सरलतापूर्वक देखा जा सकता है। विभिन्न माध्यमों को अनेक विधियों से प्रयुक्त करके भी गति का प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। उदाहरण के लिये– स्पष्ट तूलिकाघातों व विशुद्ध रंगों से बने चित्र इस श्रेणी में गिने जा सकते हैं। आधुनिक चित्रकारों में **"जैक्सन–पॉलक" (Jackson Pollok)** और **डी–कूनिंग (De-Cooning)** के चित्रों में इस प्रकार के गति सम्बन्धी प्रयोग देखे जा सकते हैं। *(चित्र सं. 98)*

रचना से पूर्व अन्तराल पूर्ण रूप से निष्क्रिय होता है, परन्तु एक बिन्दुमात्र की रचना से अन्तराल की इस निष्क्रियता को खण्डित किया जा सकता है और उसे इच्छित गति

प्रदान की जा सकती है। अतः गति के भी विविध प्रकार होते हैं जिसके प्रयोग एक ही कलाकृति में देखे जा सकते हैं।

चित्र 98 : जैक्सन पॉलक

गति के प्रकार व प्रभाव

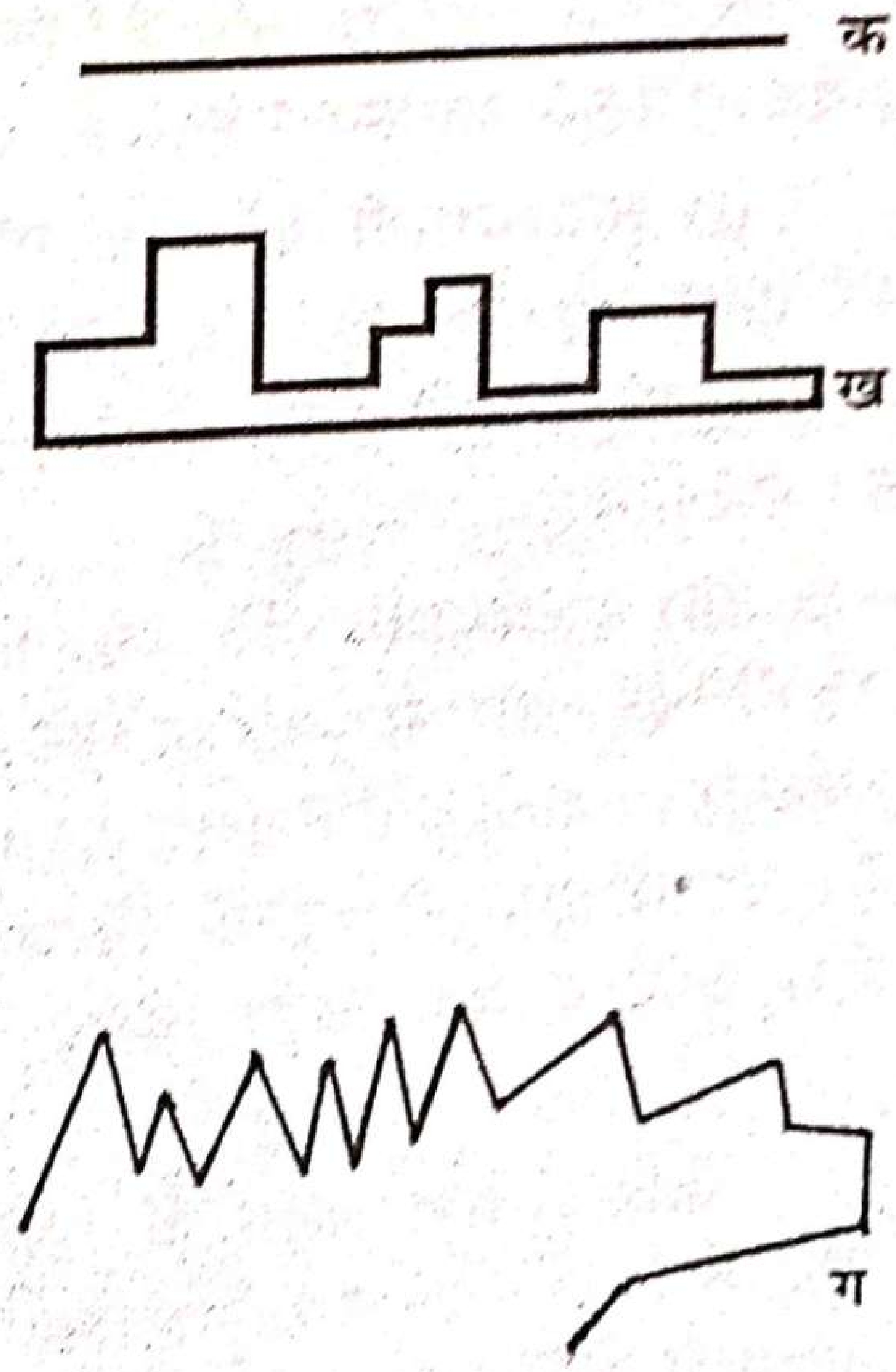

चित्र 99

1. सरल गति : कला–तत्त्वों का ऐसा संयोजन जो अत्यन्त सहज हो और दृष्टि बिना किसी उलझन और रुकावट के एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण कर सके। सरल गति में कोई कलात्मकता नहीं होती है। अतः चित्र–तल पर इसके अधिक प्रयोग से एकरसता उत्पन्न होती है। *(चित्र सं. 99 क, ख)*

2. वक्र गति : गति का यह प्रकार अपेक्षाकृत जटिल एवं रोचक है। इसके अन्तर्गत दो प्रकार की गतियाँ आती हैं–

(i) कोणीय गति–इसमें गति के जटिल कोण होने के कारण क्रमशः ऊपर व नीचे की ओर होती हुई आगे बढ़ती है। जटिल कोण अचानक दृष्टि के मार्ग को अवरुद्ध कर उसे अन्य दिशा में मोड़ देते हैं। रचना में इसका अधिक प्रयोग दृष्टि को थका देता है। इस कारण इस प्रकार की लय दृष्टि के लिये सुखद नहीं कही जा सकती। कोणीय गति रचना में तनाव, आकस्मिकता व तीव्रता का प्रभाव उत्पन्न करती है। *(चित्र सं. 99)*

(ii) प्रवाहयुक्त गति–कोणीय गति में कुछ परिवर्तन होकर प्रेक्षक के दृष्टि कोणों के स्थान पर कोमल एवं प्रवाह पूर्ण गति–युक्त संचरण करती है। नदी की लहरदार गति इसी के अन्तर्गत आती है। प्रवाह–युक्त गति ही सर्वाधिक सुखद मानी जा सकती है। इस गति से कोमलता, माधुर्य, लयात्मकता आदि प्रभाव उत्पन्न होते हैं। (चित्र सं. 100)

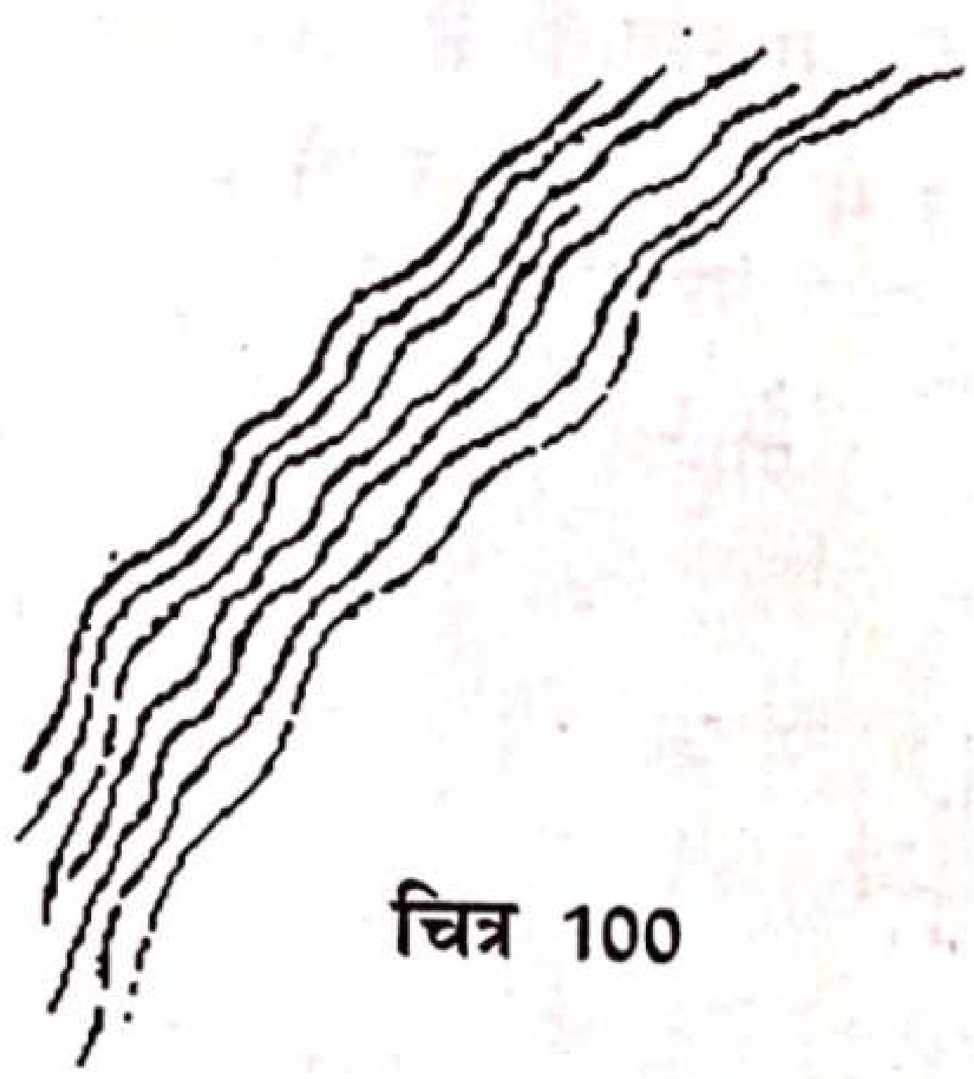

चित्र 100

3. खण्डित गति : रचना में दृष्टि के प्रवाह क्रम को बीच–बीच में तोड़कर खण्डित गति उत्पन्न की जा सकती है। अचानक दिशा परिवर्तन करके दृष्टि को दूसरी ओर ले जाने से भी गति उत्पन्न होती है। गति के इस प्रकार में आकस्मिकता होने के कारण सर्वाधिक गतिशीलता होती है। *(चित्र सं. 101)*

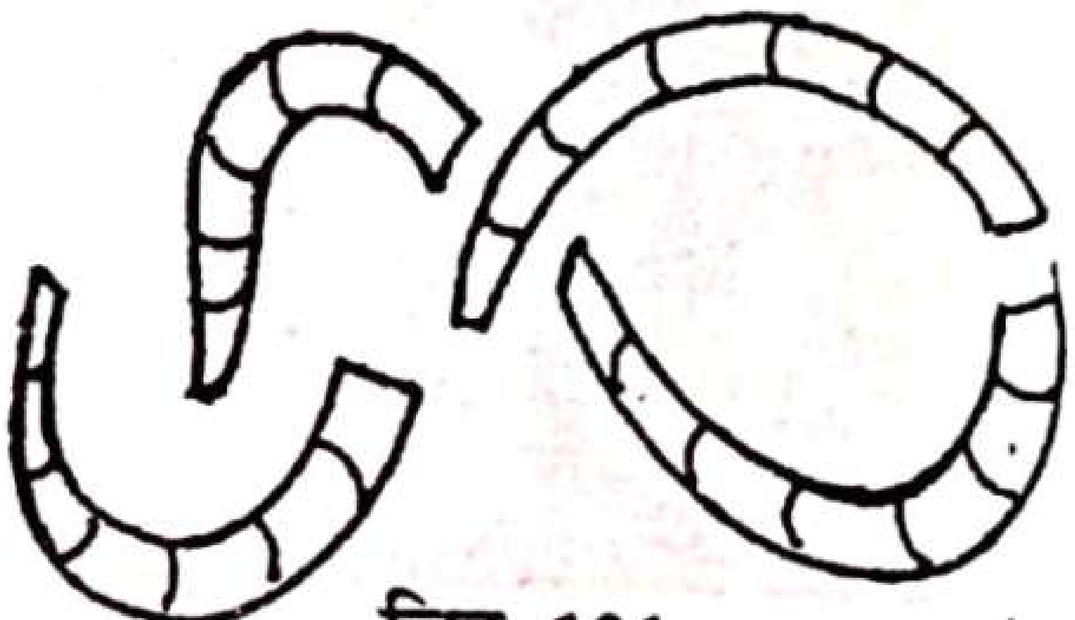

चित्र 101

दिशा के आधार पर गति के निम्नलिखित वर्गीकरण किये जा सकते हैं–

(i) ऊद्‌र्ध्वगामी गति–जो गति दृष्टि को ऊपर की ओर ले जाये। यह उच्चता, उत्साह, स्फूर्ति आदि भावों को उत्पन्न करती है। *(चित्र सं. 102)*

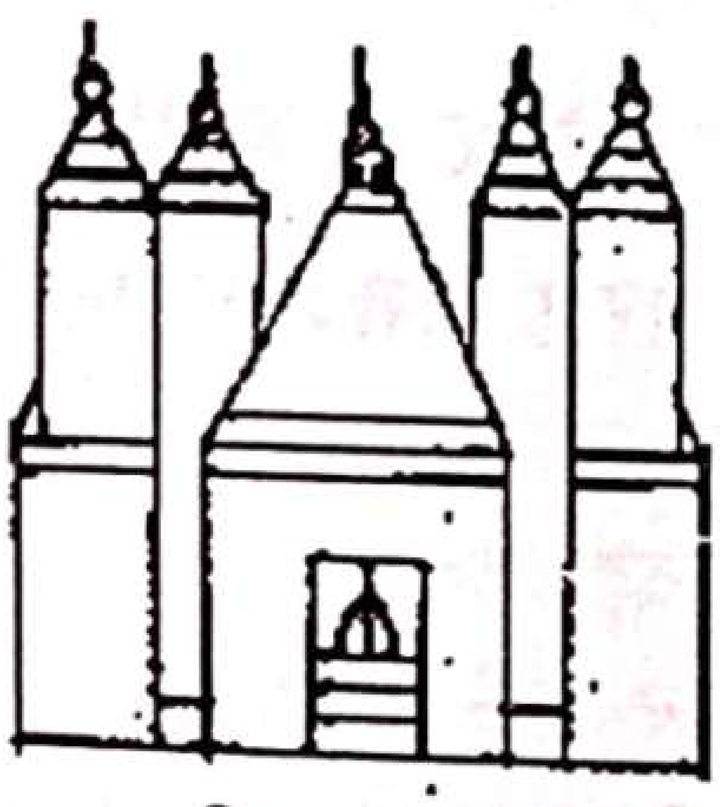

चित्र 102

(ii) अधोगामी गति–जो गति दृष्टि को नीचे की ओर ले जाये या भूमि की ओर संकेत करने वाली गतियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं। साधारणतया ये गतियाँ निराशा, दुःख, पीड़ा आदि के भाव उत्पन्न करती हैं। *(चित्र सं. 103)*

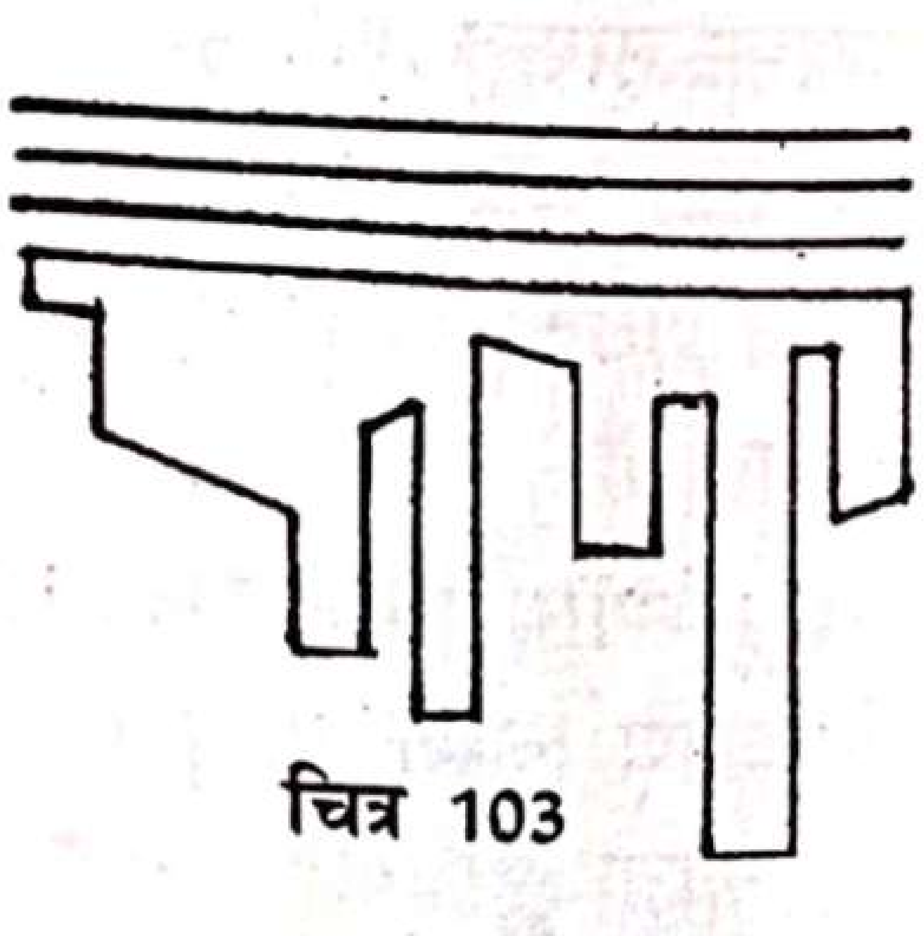

चित्र 103

(iii) क्षैतिज गति–जो गति क्षितिज रेखा के समानान्तर रचे गये दृष्टि–पथ का अनुसरण करे। इस प्रकार की गति विश्रान्ति, स्थिरता, ठहराव, निद्रा आदि भावों को उत्पन्न करने वाली होती है। *(चित्र सं. 104)*

चित्र 104

(iv) तिरछी गति–तिरछी अथवा कर्णवत् गति अन्तराल को एक कोण से दूसरे कोण पर काटती है। इस प्रकार की गति में सर्वाधिक क्रियाशीलता झलकती है। रचना में इस प्रकार की गति को नियन्त्रित करके प्रभाव की तीव्रता को कम किया जा सकता है। *(चित्र सं. 105)*

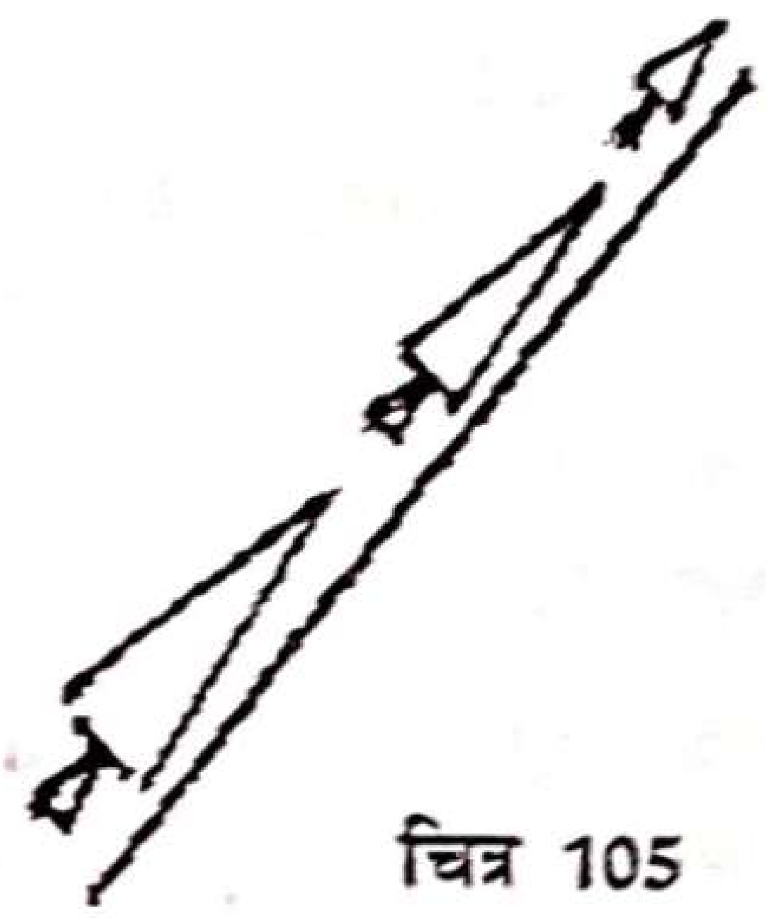

चित्र 105

गति का महत्त्व

गति का महत्त्व न केवल मनुष्य के जीवन में है अपितु वह कलाओं के अन्तर्गत भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। दृश्य–कलाओं के साथ–साथ संगीत व काव्य, नृत्य इत्यादि में उसकी उपस्थिति सर्वमान्य है। रूपप्रद कलाओं का तो यह एक प्रमुख सिद्धान्त है। गति चित्र में क्रमबद्धता के माध्यम से रचना की विषय–वस्तु को सामने लाती है। भारतीय चित्रकला में **'रेखीय–लयात्मकता'** पर विशेष बल दिया गया है। शास्त्रीय कलाओं के अन्तर्गत इसे विशेष महत्त्व दिया गया है। **अजन्ता की महान् चित्रावली इसका साक्षात् उदाहरण प्रस्तुत करती है।** लयात्मक व गतिपूर्ण रचनायें मानसिक तनाव को दूर करती हैं। संगीत की लयात्मकता, नदी की लहरों का प्रवाह और उसकी गति, पक्षियों की उड़ान जिस प्रकार मन–मस्तिष्क को शान्ति प्रदान करते हैं उसी प्रकार लयपूर्ण–गतियुक्त कलाकृतियाँ भी प्रेक्षक को मानसिक शान्ति प्रदान करती हैं व उसकी अनुभूति सुखद होती है।

प्रवाह–सृजन विधियाँ

कला रचना में प्रवाह–सृजन के लिए निम्न विधियाँ अपनाई जा सकती हैं–

1. पुनरावृत्ति (Repetition) : एक ही प्रकार के रूपाकारों की जब कुछ अन्तर के साथ आवृत्ति की जाती है, तो दृष्टि एक आकृति से दूसरी आकृति पर चलती जाती है। समान आकारों की पुनरावृत्ति रचना की दृष्टि से सम्भवतः सहजतम विधि कही जा सकती है, साथ ही प्राचीनतम भी। समान आकारों की पुनरावृत्ति रचना में स्पष्टता, शक्ति, पूर्णता एवं एकीकृत प्रभाव उत्पन्न करती है। आकारों के मध्य अन्तराल दृष्टि को निरन्तरता प्रदान करता है। परन्तु इसका अधिक प्रयोग अरुचि व एकरसता प्रदान करता है। कल्पना व मौलिकता के प्रयोग से इसे रुचिकर बनाया जा सकता है। भारतीय लघु–चित्रों में प्रकृति के चित्रण में इसका बहुतायत से प्रयोग किया गया है। *(चित्र सं. 106 क, ख)* वस्त्रों, कालीनों, दीवारों के कागज (Wall-Paper) स्थापत्य, बुनाई, छपाई एवं अलंकरणों की रचना

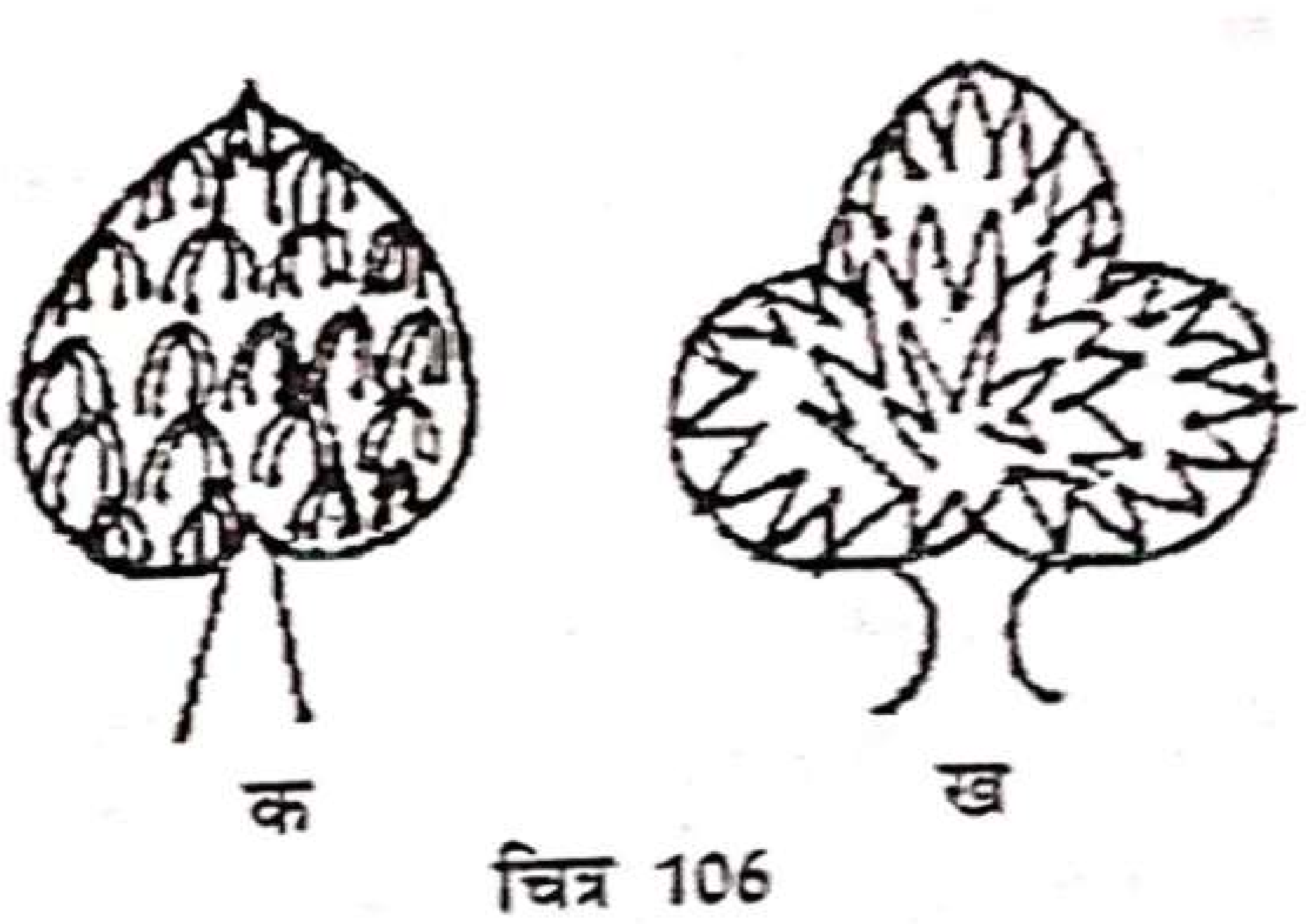

क ख

चित्र 106

में इस विधि को प्रयोग में लाया जाता है। आकारों की आवृत्ति साधारणतया तीन प्रकार से की जाती है– **'लम्बवत्', 'क्षैतिज', 'कर्णवत्'**। *(चित्र सं. 107 क, ख, ग)*

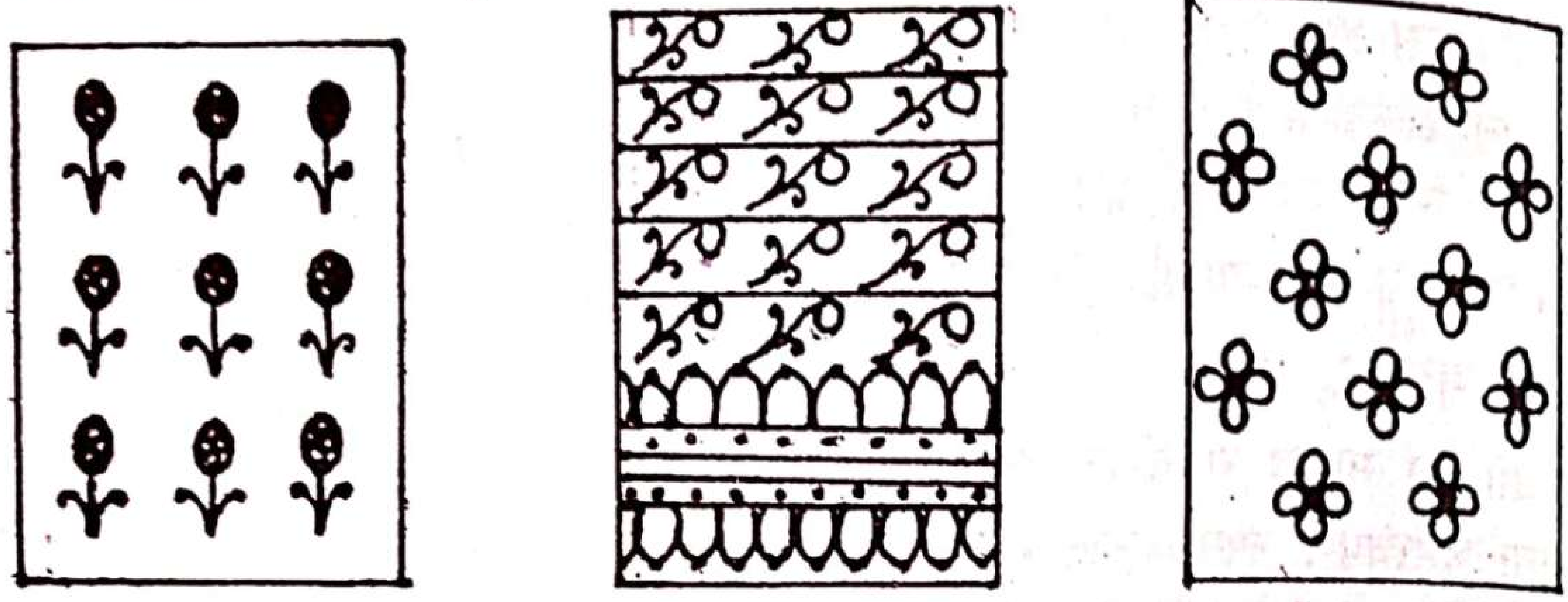

क ख ग

चित्र 107

2. अनुक्रम (Gradation) : जब किसी आकृति को क्रमिक परिवर्तन के साथ विभिन्न आकारों में आवृत किया जाता है। यह विधि पुनरावृत्ति से अधिक शक्तिपूर्ण गति का प्रभाव उत्पन्न करती है। उदाहरण के लिये– छोटे से बड़े होते आकार, गोलाकार से कोणयुक्त होते आकार अनुक्रम के अन्तर्गत आ सकते हैं। रचना की दृष्टि से इसमें अधिक स्वतंत्रता होती है। अनुक्रम दो प्रकार का होता है– **"स्पष्ट" और "जटिल"**। *(चित्र सं. 108 क, ख)*

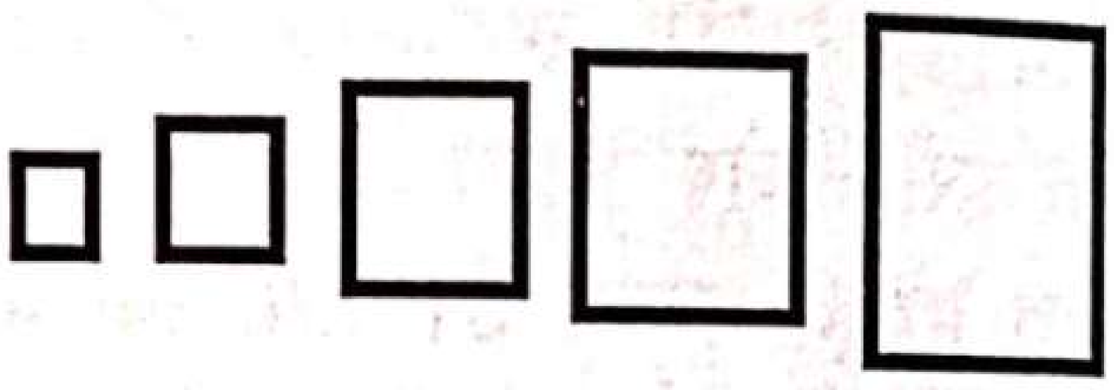

क

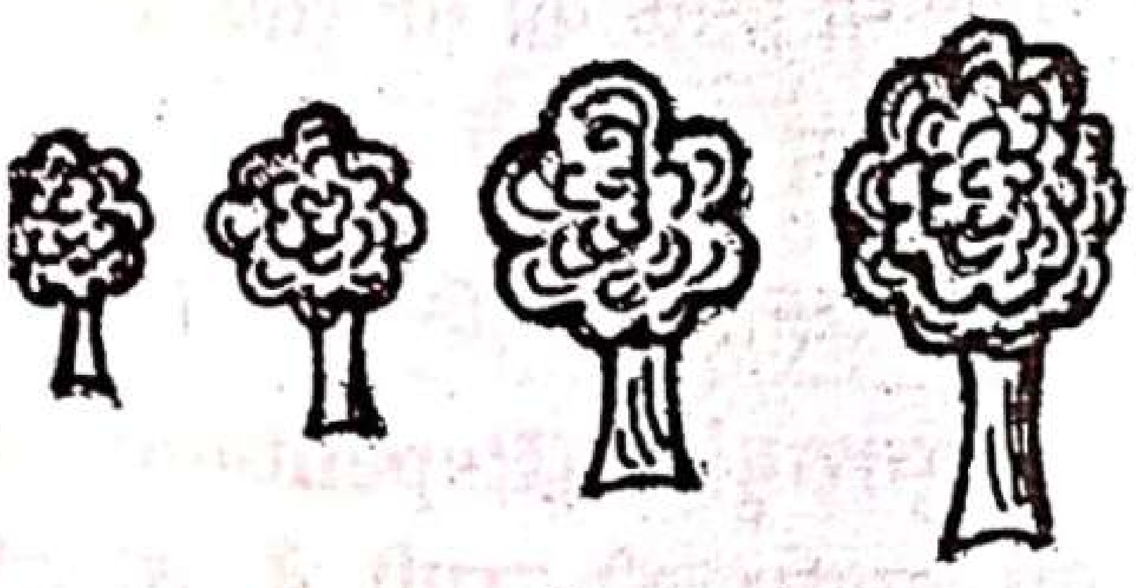

ख

चित्र 108

जिस प्रकार रेखा दृष्टि का दिशा निर्देशन करती है, उसी प्रकार अनुक्रम भी दृष्टि का दिशा निर्देशन का कार्य करता है। अतः रचना में इसका उचित प्रयोग प्रवाहयुक्त गति का सृजन करता है। *(चित्र सं. 109)*

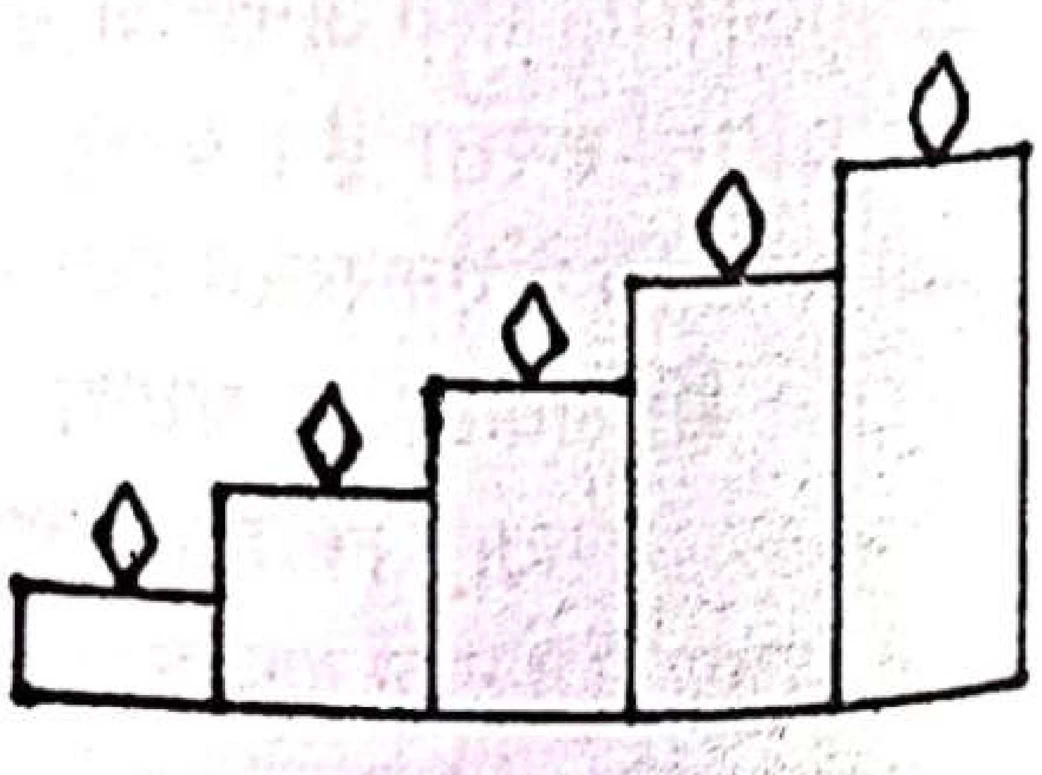

चित्र 109

आवृत्ति एवं अनुक्रम का एक सम्मिलित रूप भी प्रयोग में लाया जा सकता है। इस विधि को **"विकिरण" (Radiation)** कहते हैं। इस पद्धति में गति एक मध्य बिन्दु अथवा आकर्षण केन्द्र से क्रमशः बाहर की ओर सभी

दिशाओं में फैलती हुई प्रसारित होती है। इन रेखाओं को तिरछा कर देने या कर्णवत् झुका देने से तीव्र गति का आभास होता है। जैसे– **'नदी में भँवर'**। *(चित्र सं. 110)*

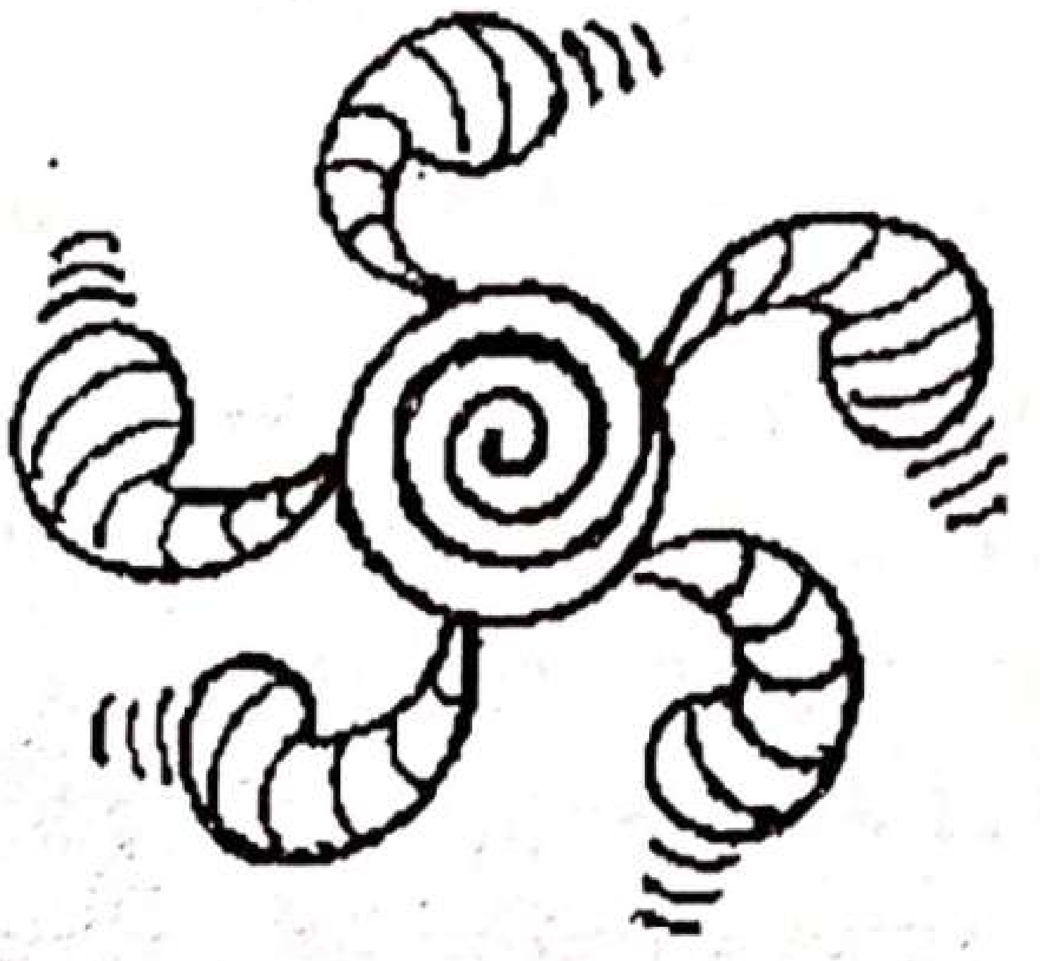

चित्र 110

3. निरन्तरता (Continuity) : रेखा, रूप, वर्ण इत्यादि की क्रमबद्ध लयात्मकता निरन्तरता के प्रभाव को उत्पन्न करती है। लम्बी–घुमावदार लयात्मक रेखाओं के माध्यम से प्रवाह उत्पन्न करने की विधि का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अजन्ता के चित्र हैं। जहाँ पशु–पक्षी, मानव जगत, कमल की बेलें व अलंकरण सभी एक मात्र शक्तिशाली प्रवाहपूर्ण लयात्मक रेखा के अनुरूप ही ढल गये हैं। यह विधि दृष्टि को एक सतत् प्रवाह की अनुभूति देती है। आलंकारिक रचनाओं में इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। *(चित्र सं. 111)*

चित्र 111

निष्कर्ष

इस प्रकार **"गति"** मानव जीवन की ही भाँति कला–रचना में भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। यह कलाकृति की सजीवता का प्रमाण होती है।

○○○

प्रश्नावली

(1) प्रवाह की परिभाषा दीजिये। कला–रचना में प्रवाह व सामन्जस्य की तुलना प्रस्तुत कीजिये।

(2) कलाकृति में किन विधियों के माध्यम से प्रवाह का सृजन किया जा सकता है? उदाहरण सहित समझाइये।

(3) मानव जीवन में गति के महत्त्व को समझाते हुए बताइये कि एक कला–रचना में गति का क्या महत्त्व है?

(4) गति के स्वरूप, प्रकारों व प्रभावों पर प्रकाश डालिये।

प्रमाण
(Proportion)

मनुष्य स्वभावतः वस्तुओं के प्रति तुलनात्मक दृष्टिकोण रखता है। यह प्रवृत्ति कलाकृति की रचना करते समय भी प्रेरणा देती है। प्राकृतिक संरचनाओं में अधिकांशतः एक **'अनुपात–व्यवस्था'** सदैव अन्तर्निहित रहती है। **मानव शरीर इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।** मानव शरीर का प्रत्येक अंग एक निश्चित अनुपात लिये होता है। इसी प्रकार मानव निर्मित रचनाओं में भी उनको तुलनात्मक दृष्टिकोण व अनुपात पर आधारित किया जाता है। जब कभी भी दो अथवा अधिक आकृतियाँ साथ–साथ स्थित होती हैं तो वहीं उनका प्रमाण भी सुनिश्चित हो जाता है।

परिभाषा

प्रमाण को **"अनुपात"** भी कहा जाता है। इससे तात्पर्य है– **"लम्बाई–चौड़ाई का आपसी सम्बन्ध" तथा सभी आकृतियों का एक दूसरे से सम्बन्ध और चित्र के सभी तत्त्वों का आपस में सम्बन्ध।** पारस्परिक सम्बन्ध पर आधारित होने के कारण इसे **"सम्बद्धता का सिद्धान्त" (Law of Relationship)** भी कहा जाता है। अनुपात मुख्यतः एक गणितीय (Mathematical) अवधारणा है जिसमें इकाई के एक भाग का सम्बन्ध सम्पूर्ण इकाई के अन्य भागों से भी होता है। इसलिये कला–रचना में **"अनुपात"** का प्रयोग **"सौन्दर्य"** व **"सामन्जस्य"** उत्पन्न करने के लिये किया जाता है। प्रमाण के अतिक्रमण से चित्र अरुचिकर भी हो जाता है। अतः प्रमाण का दायित्व चित्र में प्रेक्षक की रुचि उत्पन्न करना है। अच्छे प्रमाण निर्धारण के लिये उसके उचित ज्ञान की आवश्यकता होती है।

प्रमाण का स्वरूप व प्रयोग

आकृतियों की तुलनात्मक स्थिति प्रमाण स्थापना करती है। वह अच्छा या बुरा दोनों ही प्रकार का हो सकता है। एक से प्रमाण से नीरसता का बोध होता है। उदाहरण के लिये– लम्बाई व चौड़ाई का अनुपात बराबर होने पर वह अरुचिकर प्रतीत होता है। इसी प्रकार लम्बाई चौड़ाई में अत्यधिक अन्तर भी अरुचिकर प्रमाण प्रस्तुत करता है। अतः आनुपातिक सम्बन्ध प्राचीन काल से ही चिन्तन के विषय रहे हैं। धर्म, विज्ञान व कला आदि सभी क्षेत्रों में वे विचारणीय रहे हैं। *(चित्र सं. 112 क, ख, ग)*

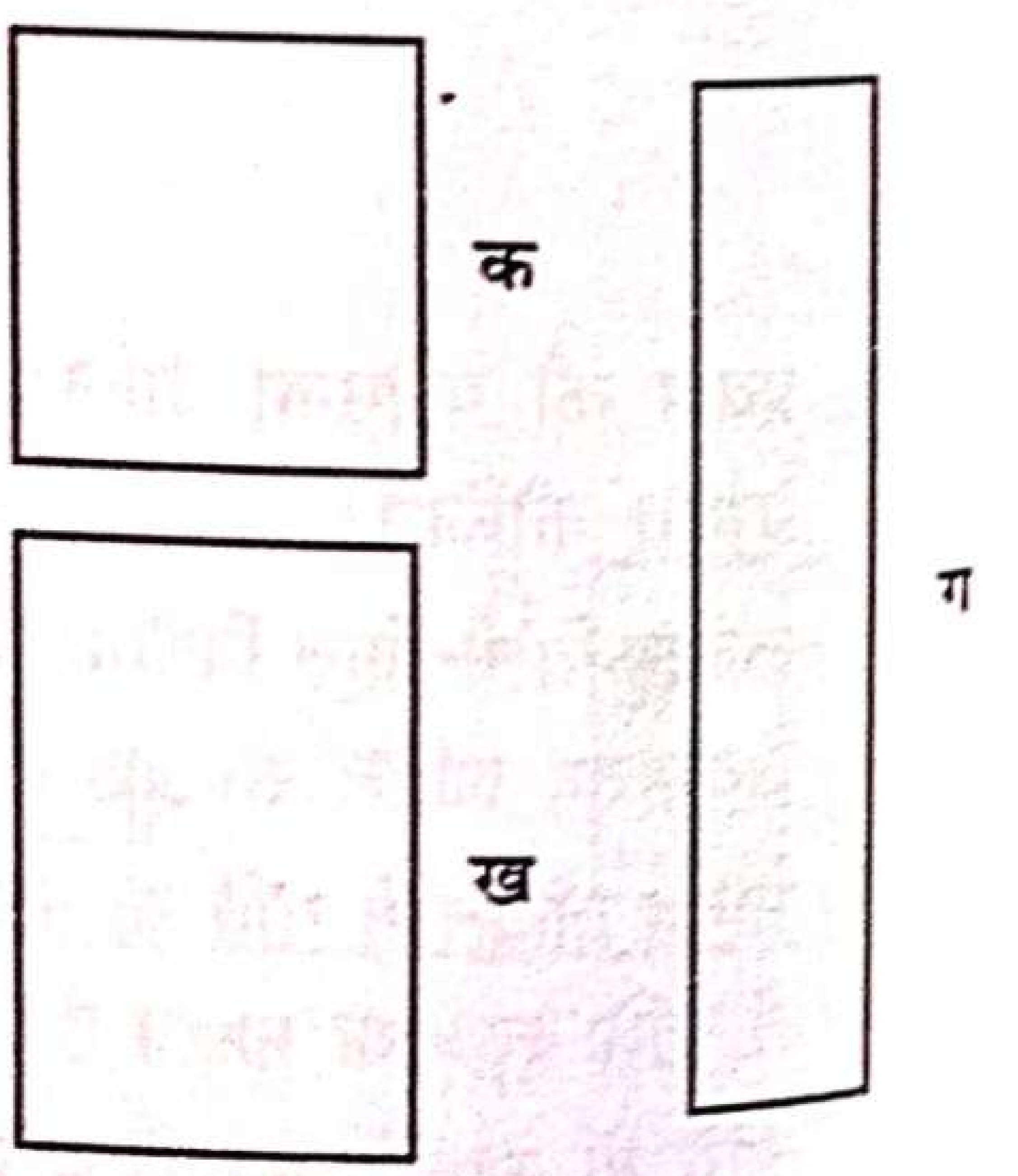

चित्र 112

कला रचना में अनुपात के प्रयोग को तीन स्थितियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है– **"सौन्दर्य–रचना", "रचना में सौन्दर्य स्थापना के नियमों की खोज"** तथा **'उक्त नियमों का रचना में प्रयोग"**।

अनुपात या प्रमाण के प्रयोग में भी **दो विचारधारायें** हैं– पहली विचारधारा के अनुसार– **'रचना में सौन्दर्य स्थापना के लिये प्रमाण आवश्यक होता है।'** दूसरी विचारधारा के अनुसार– **'रचना में सौन्दर्य रचना व्यक्तिगत रुचि के आधार पर की जाती है।'** अतः इसके अनुसार अनुपात सौन्दर्य–रचना का अनिवार्य अंग नहीं है। यद्यपि यह धारणा व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है, तथापि सौन्दर्य की अनुभूति आकृति के अनुपात पर ही अधिक निर्भर करती है। अतः कला–रचना में अनुपात की उपस्थिति सदैव ही स्वीकार की गई है।

सौन्दर्य–रचना के लिये प्राचीन काल से ही नियमों की खोज की जाती रही है। प्राचीन ग्रीस–वासियों ने इसके लिये खोज कर ऐसा प्रमाण प्राप्त किया, जिसके अनुसार प्रत्येक आकृति, रुचिकर लगे। इसे **यूक्लिड के "स्वर्णिम आयत सिद्धान्त" (Euclid's Golden Section)** के नाम से जाना जाता है। इस विभाजन में व्यवस्था इस प्रकार की जाती है– बड़ी इकाई छोटी इकाई से उसी अनुपात में सम्बन्धित होती है जो सम्बन्ध बड़ी इकाई का सम्पूर्ण इकाई से होता है। इस विभाजन में एकता व विविधता दोनों ही उपस्थित होते हैं। इसीलिये यह सिद्धान्त अत्यन्त लोकप्रिय है। प्राचीन मिस्र व यूनानी कलाकारों ने इस सिद्धान्त का प्रयोग कला की प्रत्येक रचना में किया है। पुनर्जागरणकालीन रचनाओं में इस सिद्धान्त का प्रयोग बहुतायत से किया गया है। आगे चलकर यह सिद्धान्त इतना लोकप्रिय हो गया कि इसे **"दैवी–विभाजन" (Divine Section)** के नाम से पुकारा जाने लगा। *(चित्र सं. 113)*

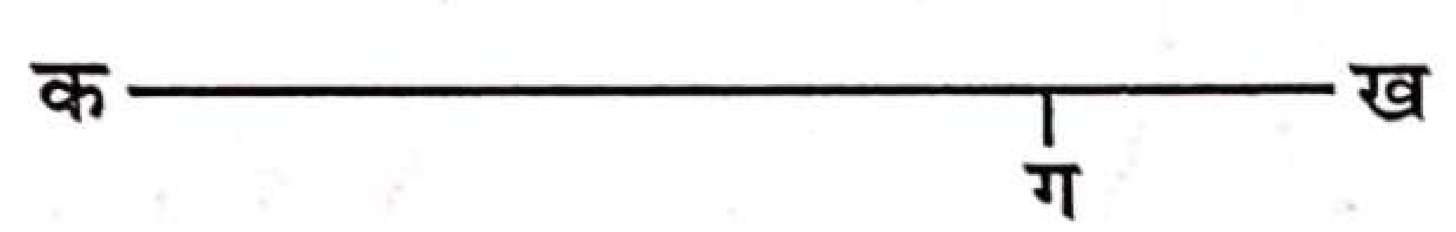

चित्र 113

वर्तमान समय में भी इस सिद्धान्त की लोकप्रियता कम नहीं हुई है। प्राकृतिक रूपों में भी इसकी उपस्थिति व्यापक रूप में देखी जा सकती है। **कला रचना में प्रमाण का प्रयोग व्यवस्था तथा सौन्दर्य लाने की दृष्टि से ही किया जाता है।** अनुपात या प्रमाण व्यवस्था की यह स्थिति रेखा, वर्ण, रूपाकार, अन्तराल आदि सभी कला–तत्त्वों में होने पर ही अपेक्षित प्रभाव देती है। यूँ अनुपात का कभी कोई सार्वभौमिक नियम नहीं रहा है, वरन् दर्शक की स्थिति, आकृति की गतिशीलता व उसकी विभिन्न स्थितियाँ आनुपातिक सम्बन्धों में भिन्नता लाने के कारण बनते हैं। इस विषय के व्यापक तौर पर विवादास्पद होने पर भी प्राचीन स्थापत्य, चित्र व मूर्ति रचना में इन नियमों का पर्याप्त व्यवहार मिलता है। **प्रमाण–प्रयोग के व्यवस्थित उदाहरण सर्वप्रथम मिस्र से प्राप्त होते हैं।** जो **"पिरामिड"** की स्थापत्य रचना में ही नहीं, वरन् मूर्ति व चित्र–रचना में भी देखे जा सकते हैं।

यूनान की प्राचीन कला में भी इनके प्रयोग देखे जा सकते हैं। यूनानी दार्शनिक **"पाइथागोरस"**, **"यूक्लिड"** तथा **"प्लेटो"** के विचारों ने मध्ययुगीन अनुपात–सम्बन्धी अवधारणाओं को प्रभावित किया। आगे चलकर **"रेनेसाँ काल" (Renaissance Period)** में इस प्रमाण–व्यवस्था को स्थापत्य–रचना के अतिरिक्त भी व्यापक रूप से प्रयोग में लाया गया। लियोनार्डो, माइकेल–ऐंजिलो आदि कलाकारों ने मानव शरीर की रचना में इस प्रमाण–व्यवस्था को अपनाया। *(चित्र सं. 114)*

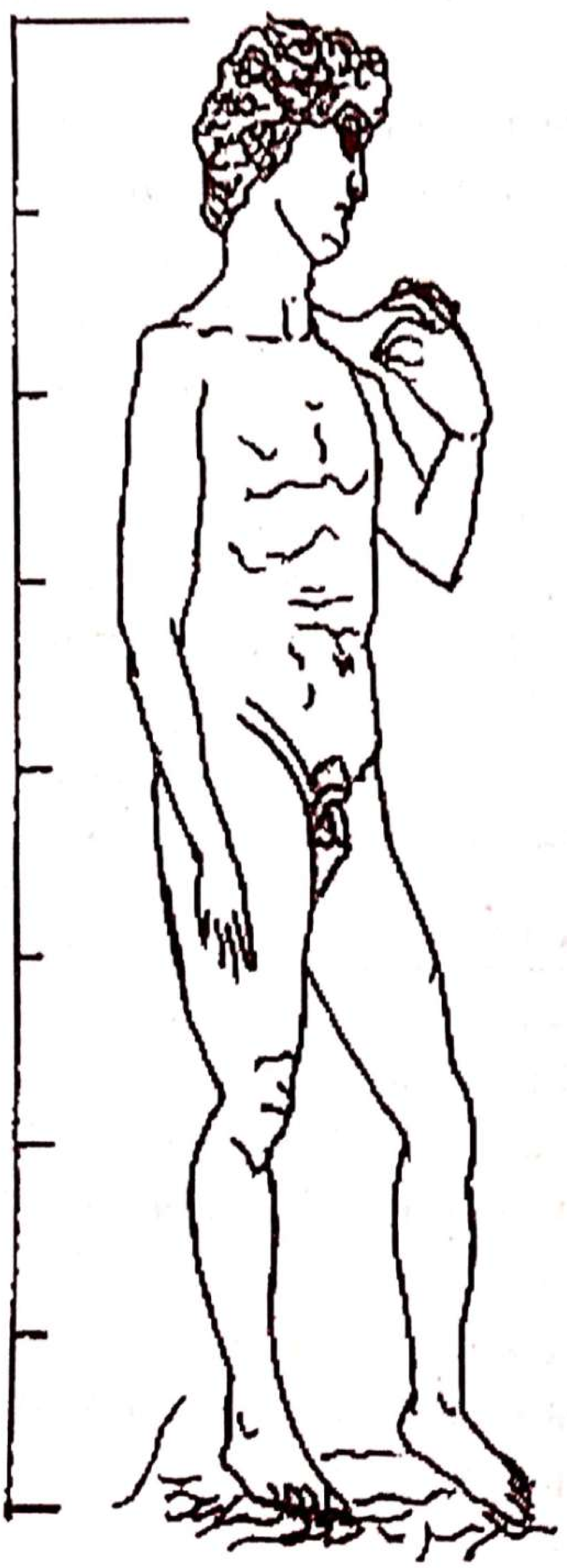

चित्र 114 : माइकेल ऐंजिलो का मूर्तिशिल्प

प्रमाण तथा भूमि–विभाजन

प्रमाण से सम्बन्धित अन्य समस्या चित्रभूमि के विभाजन की होती है। **स्वर्णिम सिद्धान्त के अनुसार आकृति को ठीक मध्य में न रखकर दायें अथवा बायें अथवा ऊपर या नीचे रखा जाता है जो अनुपात में 2 : 3 हो।** अनुपात व्यवस्था की यह स्थिति रेखा, वर्ण, आकार आदि सभी कला–तत्त्वों में होने पर ही इच्छित प्रभाव उत्पन्न करती है। परन्तु अनेक बार रचना तत्त्वों का पारस्परिक सम्बन्ध उनके यथार्थ स्वरूप को परिवर्तित कर देता है। अर्थात् एक समान माप के आयत क्षैतिज व लम्बवत् रेखाओं से विभाजित करने पर विभिन्न माप का आभास देते हैं। इसलिये जब किसी छोटी आकृति को लम्बा दिखाना हो तो वहाँ लम्बवत् रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार लम्बी आकृति को छोटा दिखाने के लिये क्षैतिज रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। प्रमाण के सन्दर्भ में देखें तो छोटा–बड़ा, लम्बा आदि सभी पारिभाषिक शब्दावली हैं। *(चित्र सं. 115)*

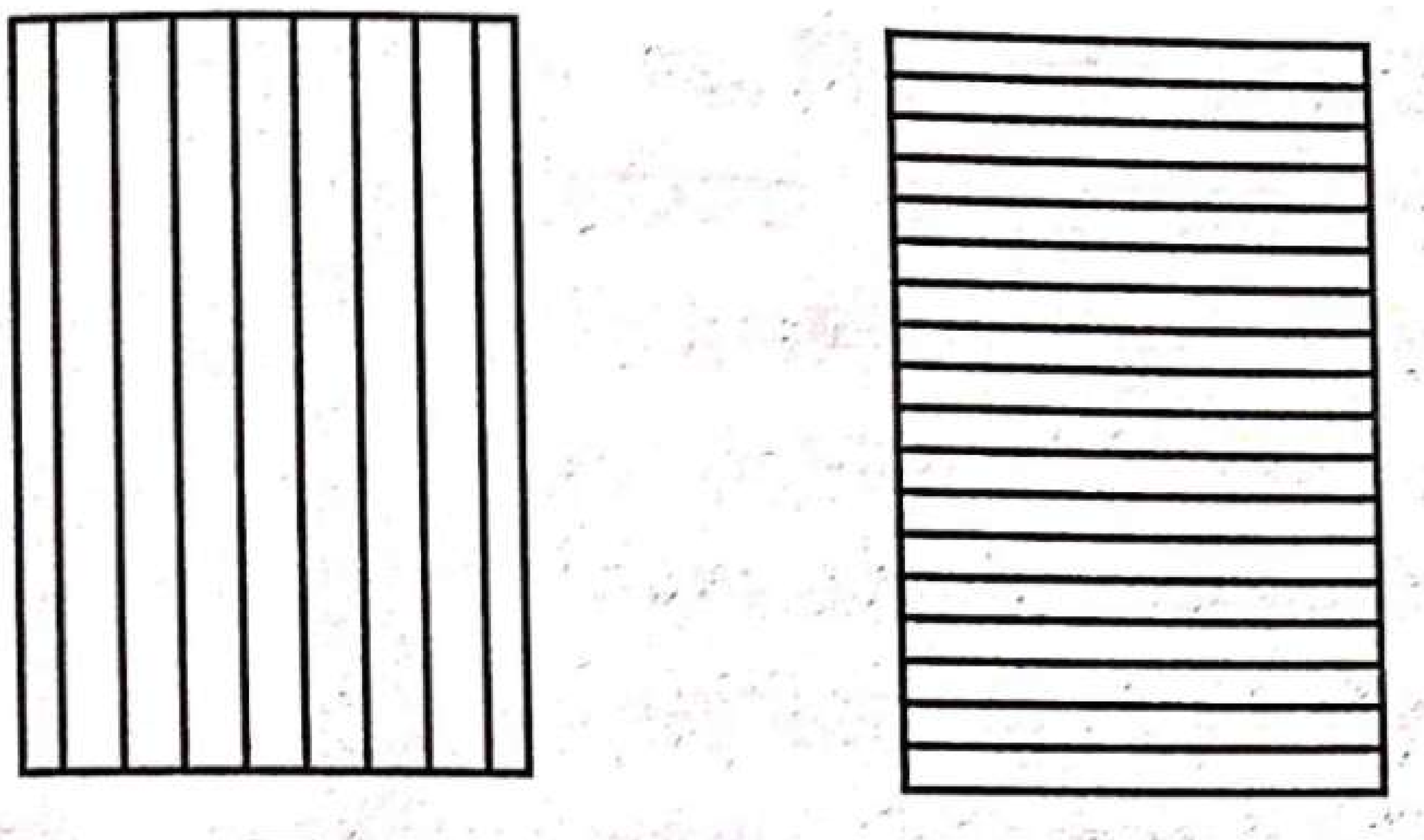

क   ख

चित्र 115

वर्ण और प्रमाण

प्रमाण परिवर्तन के माध्यम से चित्र में रुचि उत्पन्न की जा सकती है। जबकि समान आकार आदि की आवृत्ति से नीरसता उत्पन्न होती है। इस प्रकार आकृति व वर्ण का चयन इस प्रकार करना चाहिये कि रंग–योजना आकर्षक दिखाई दे, क्योंकि समान वर्ण–प्रमाण वाली रंग–योजना से असमान रंग–प्रमाण वाला चित्र अधिक आकर्षक दिखाई देगा। किसी चित्र में एक समान आकर्षण शक्ति होने पर **"स्वर्णिम–विभाजन सिद्धान्त"** को प्रयोग कर उनके अनुपात में अन्तर किया जा सकता है। किन्तु विभिन्न आकर्षण शक्ति वाले वर्ण प्रयोग के लिये **"विस्तार–सिद्धान्त"** को ही अपनाना श्रेयस्कर रहता है।

मानवाकृति और प्रमाण

मानव–आकृति में प्रमाण–निर्धारण के लिये भिन्न–भिन्न अवधारणायें प्रचलित रही हैं। **'रेनेसाँकालीन कलाकारों'** ने मानव आकृति को ही अनुपात–व्यवस्था का सर्वश्रेष्ठ मानदण्ड स्वीकार किया और अपने ढंग से **'आदर्श–प्रमाण व्यवस्था'** के नियम खोजने के प्रयास किये। स्थापत्यकार **"अल्बर्टी"** ने आदर्श मानव आकृति की रचना के लिये एक निश्चित अनुपात निर्धारित करने का प्रयास किया। जिसके अनुसार– आदर्श सौन्दर्य की स्थापना के लिये अनेक आकृतियों से चयन करके रचना की जानी चाहिये।

"लियोनार्दो" के अनुसार– मानव–शरीर की रचना में **"गति"** को ध्यान में रखकर अनुपात–व्यवस्था को प्रयोग में लाना चाहिये। इस सन्दर्भ में लियोनार्दो ने **'परिप्रेक्ष्य'** (Perspective) तथा **'क्षय–वृद्धि'** (Fore-Shortning) के सिद्धान्तों का भी अनुपात–व्यवस्था में प्रयोग किया।

"अल्बर्ट ड्यूरर" ने मानव आकृति की **"गतिशीलता"** को ध्यान में रखते हुए आकृति रचना में सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिये सदैव एक ही अनुपात–व्यवस्था के व्यवहार का खण्डन किया जबकि **'माइकेल ऐंजिलो'** ने मानव देह को **"आठ भागों"** में विभाजित कर प्रमाण निश्चित किया। जिसके अनुसार– सिर एक इकाई है। नारी आकृति को सिर के माप से साढ़े सात गुना बनाया जाना चाहिये। शेष शरीर का आकार इसी अनुपात में निश्चित होना चाहिये। *(चित्र सं. 114 : माइकेल ऐंजिलो)*

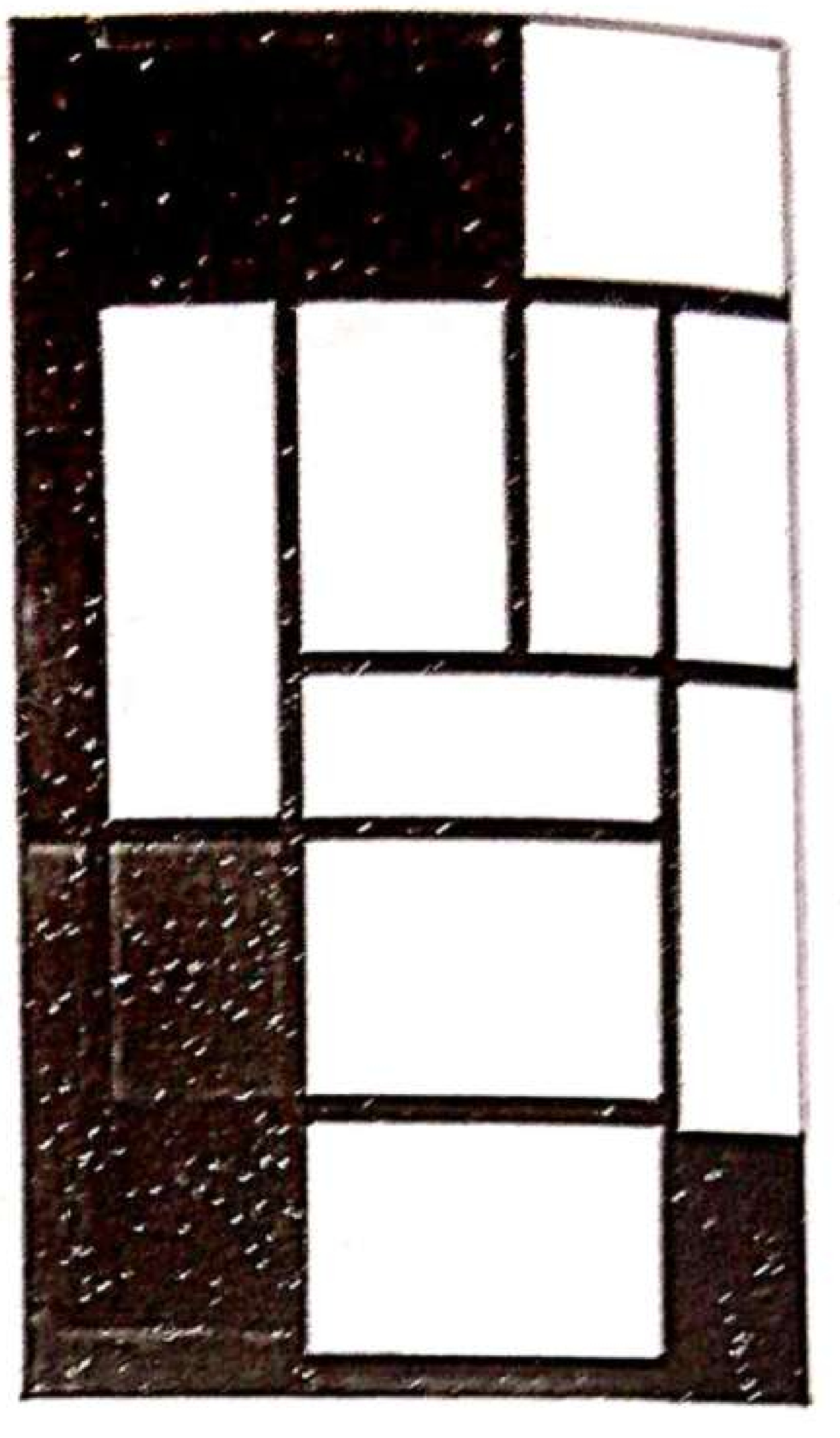

चित्र 116 : मौन्ड्रिया

इसी प्रकार **ग्रीक व रोमन मूर्तिकला व वास्तुकला में प्रमाण–निर्धारण के उपयोगी सिद्धान्त मिलते हैं।** आधुनिक **'रूपवादी'** (Formalist) कलाकारों ने भी आदर्श प्रमाण व्यवस्था के प्रति रुचि, उनके नियमों, सांख्यिकी सम्बन्धों और ज्यामितिक रूपाकारों के अध्ययन और विश्लेषण के प्रति रुचि दिखाई है। **'घनवादी'** (Cubism) कलाकारों ने चित्रभूमि के विभाजन और अन्तराल में ज्यामितिक रूपाकारों को **'गणितीय–योजना'** में व्यवस्थित करने की दृष्टि से प्रमाण पर विचार प्रारम्भ किया। **'कान्दिस्की'** (Kandiski) **'मौन्ड्रिया'** (Mondrian) तथा **'शिरिको'** (Chirico) सरीखे आधुनिक कलाकारों के चित्रों में प्रमाण–व्यवस्था देखने को मिलती है, परन्तु इन्होंने प्रमाण अथवा अनुपात को सीमित अर्थों में प्रयुक्त न करके उसके **'समग्र'** स्वरूप को अपनाया। *(चित्र सं. 116)*

भारतीय कला सम्बन्धी शास्त्रों में भी मानव आकृति की रचना की दृष्टि से प्रमाण–व्यवस्था पर विस्तृत विवेचना मिलती है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के **"चित्र–सूत्र"** नामक अध्याय में **"ताल–मान"** को नाप की एक इकाई माना गया है, जिसका विस्तार **'बारह अंगुल'** माना गया है तथा **"मान"** का प्रयोग अनुपात के अर्थ में किया गया है। इस अनुपात–व्यवस्था के अनुसार चित्र व मूर्ति में विभाजन करने के पर्याप्त उदाहरण प्राप्त होते हैं।

भारतीय कला ग्रन्थों में आकृतियों की गति को दृष्टि में रखकर अनुपात में होने वाले परिवर्तन का संकेत दिया गया है और आकृतियों को विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत करके उनके मध्य के आनुपातिक सम्बन्धों का विस्तृत विवेचन किया गया है। **"चित्र–सूत्र"** के **"रूप–निर्माण"** **नामक खण्ड में आदर्श आकृति एवं सही अनुपात के लिये "प्रमाण" शब्द का प्रयोग मिलता है, जो न केवल व्यक्ति–आकृति की अनुपात व्यवस्था, वरन् सम्पूर्ण चित्र में प्राप्त आनुपातिक सम्बन्धों का द्योतक है। इस प्रकार यहाँ "प्रमाण" को चित्र का एक आवश्यक अंग तथा "प्रमाण–रहित" कृति को "अकल्याणकारी" बताया गया है।**

यह उल्लेखनीय है कि भारतीय स्थापत्य, शिल्प व चित्र रचना में आनुपातिक नियमों के व्यवहार में **"नियमबद्धता"** कम व **"परिवर्तनशीलता"** अधिक देखी गई है। भारतीय शिल्पशास्त्रियों ने मानव शरीर को उसके **"चरित्र गुण"** के अनुसार **"दस ताल"**, **"नवताल"**, **"अष्टताल"**, **"सप्तताल"** तथा **"षट्ताल"** के प्रमाण में बनाने का आग्रह किया है।

इस प्रकार भारतीय धारणा में **"गुण–दोष"** की अभिव्यक्ति के अनुसार भी मानव शरीर रचना में प्रमाण परिवर्तन का आग्रह मिलता है।

यूरोपीय कला में भी "रेनेसाँ काल" के पश्चात् प्रभाववादी–कलाकारों व अभिव्यंजनावादी कलाकारों ने अनुपात परिवर्तन की शक्ति का सदुपयोग अपने चित्रों में किया। उन्होंने वैयक्तिक रुचि के अनुरूप चित्र व मूर्ति रचना में प्रमाण–स्थापना पर बल दिया। अतः इस विचारधारा में चित्र को किसी **'सर्व–स्वीकृत नियमबद्धता'** में बाँधे जाने का विरोध किया गया, परन्तु **'अति–अभिव्यंजनावादी'** कलाकारों ने प्रमाण को मानवाकृतियों की रचना में इतना अधिक परिवर्तित किया कि वह विकृति की सीमा तक जा पहुँचा। यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि किसी भी जानी पहचानी आकृति में बहुत अधिक परिवर्तन मानव स्वभाव के लिये उपयुक्त नहीं है। उसे एक सीमा के अन्तर्गत ही रहना चाहिये। अमूर्त रूपों में यह प्रमाण परिवर्तन दर्शक को अधिक कष्टकर प्रतीत नहीं होता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अनुपात या प्रमाण मानव निर्मित वस्तुओं व प्रकृति में सर्वत्र उपस्थित होते हैं। **'सौन्दर्य–स्थापना'** के लिये कला–रचना में प्रमाण व्यवस्था रची जाती है। एकता व विविधता पर आधारित अनुपात व्यवस्था ही श्रेष्ठ मानी जाती है।

OOO

प्रश्नावली

(1) चित्रण–कला में प्रमाण–स्थापना क्यों आवश्यक है? प्रमाण प्रयोग को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।

(2) प्रमाण और भूमि–विभाजन के सन्दर्भ में "स्वर्णिम विभाजन" को स्पष्ट कीजिये।

(3) क्या मानवाकृति के लिये कोई आदर्श प्रमाण निश्चित किया जा सकता है? इस सम्बन्ध में भारतीय व पश्चिमी विचारधारा को स्पष्ट कीजिये।

दृश्यकलाओं में परम्परागतता और आधुनिकता
(Traditionality and Modernity in Visual Arts)

किसी भी कलात्मक विचार को कलाकृति का रूप देने से पहले कलाकार को अपने माध्यम के **'लक्षण'** अथवा **'गुणों'** तथा उसके अन्तर्गत प्रयोग में लाई जाने वाली सामग्री की पूर्ण जानकारी होना अति आवश्यक है। अतः कला–सृजन माध्यमों एवं सामग्रियों की विधिवत शिक्षा व जानकारी हेतु कला संस्थाओं अथवा गुरु की आवश्यकता होती है जिससे कला की सैद्धान्तिक व प्रायोगिक जानकारी प्राप्त की जा सके।

प्रत्येक कला चाहे वह **दृश्य कलाएँ** (चित्रकला, मूर्तिकला, भवन–निर्माण) हों, **प्रदर्शनात्मक कलाएँ** (संगीत, नृत्य या नाटक आदि) हों, **लोक–कलाएँ, जनजातीय** कलाएँ हों उनका अपना एक **'सैद्धान्तिक'** व एक **'प्रायोगिक पक्ष'** होता है और उनके प्रदर्शन के लिए प्रत्येक के अपने माध्यम एवं सामग्रियाँ भी होती हैं। इनमें से प्रत्येक के प्रदर्शन के अपने परम्परागत तरीके भी हैं और आज आधुनिक तकनीकें आने के पश्चात् इन्हें आधुनिक सामग्रियों व माध्यमों के साथ प्रस्तुत किया जाने लगा है।

दृश्य कलाएँ :

दृश्य कलाओं के अन्तर्गत मोटे तौर पर **चित्रकला, मूर्तिकला, ग्राफिक कलाओं** व **भवन–निर्माण कलाओं** को सम्मिलित किया जाता है।

चित्रकला–

चित्र बनाने के लिए आदिकाल से लेकर आज तक के मानव ने विभिन्न प्रकार के चित्र–तल, सामग्रियों व तकनीकों का उपयोग किया है। आदिम काल में गुफाओं की **'खुरदरी दीवारें'** ही उसके चित्रण का आधार रहीं जिन पर नुकीले पत्थरों, पेड़ की टहनियों से रेखाएँ खींची गईं। फलों के छिलकों को सुखाकर या जलाकर बनाये गये रंग ही उसकी चित्रण सामग्री थी। आगे चलकर अजन्ता, एलोरा व बाघ आदि गुफाओं की **'विशाल भित्तियों पर भित्ति–चित्रण'** की आला–गीला पद्धति व सूखी पद्धतियों के माध्यम से चित्रण कार्य किया गया जिसके अन्तर्गत रामरज, काजल, लाजवर्द, टेरावर्ट, सफेद खड़िया, गेरू, हिरमिच जैसे देशज रंगों का उपयोग किया गया। मध्य काल में **'पाल तथा जैन शैली'** का पोथी चित्रण ताल पत्रों व भोज पत्रों पर लोहे की नुकीली शलाका के माध्यम से किया गया। जिस पर काली व रंगीन स्याही से लेखन व चित्रण कार्य भी

किया गया। मध्यकाल के आगे **'राजस्थानी', 'मुगल' व 'पहाड़ी शैली'** का चित्रण कार्य कागज की वसलियों पर खनिज रंगों को गिलहरी के पूँछ के बालों से बनाई गई बारीक ब्रश से किया गया। **'आधुनिक'** कलाकार ने कागज, कपड़ा, कैनवास, हार्डबोर्ड, प्लाई बोर्ड आदि को चित्रतल के रूप में उपयोग करना प्रारम्भ किया है। साथ ही कलाकारों ने अब काँच, फाइबर ग्लास, सिरेमिक्स आदि को भी चित्रतल के रूप में अपनाया है। आज बाजार में कई नई कम्पनियाँ आ गई हैं जो रंग व अन्य सहायक सामग्री उत्पादन कर रही हैं जिनके द्वारा कलाकार नई–नई तकनीक उपयोग में ला रहे हैं। प्राचीन समय में जलरंग से **'वॉश टैकनीक'** पद्धति में चित्रण कार्य किया जा रहा था। आज तैलरंग, टैम्परा, गोशे, कैनवास चित्रण तकनीक, एक्रेलिक रंग, इम्पास्टो, पारदर्शी व अपारदर्शी रंग लगाने की तकनीक, कोलाज तकनीक के साथ–साथ छापा–चित्रण तकनीक भी बहुत प्रचलन में है। प्राचीन काल में हाथ से छापे लगाने की विधि प्रचलन में थी। आजकल **'प्रिन्टिंग मशीनों'** से छापा–चित्रण किया जाता है। **'लोक–कलाओं'** में खनिज रंगों के माध्यम से भित्तियों व जमीन पर लोक कला के माण्डनें आदि बनाये जाते हैं।

मूर्तिकला–

'मूर्तिकला' की सामग्री हैं– **मिट्टी, पत्थर, प्लास्टर, लकड़ी, मोम, हाथी–दाँत एवं धातु** आदि। इन्हें ही गढ़कर, खोदकर, उभारकर अथवा ढालकर मूर्ति का निर्माण किया जाता है। मूर्तिकला में **'त्रि–आयामी'** गुण रहता है और उसे चारों ओर से घूमकर भी देखा जा सकता है। **परम्परागत रूप से मूर्ति का निर्माण मिट्टी व पत्थर आदि से ही होता था परन्तु अब मूर्ति निर्माण में लकड़ी, धातु, मोम, काँसे की ढलाई, फाइबर–ग्लास, कंकरीट–सीमेन्ट आदि का भी बहुतायत से प्रयोग होने लगा है। 'सिरेमिक'** भी आज का नवीन माध्यम है। साथ ही मूर्तिकला में **'मल्टीमीडिया'** का उपयोग किया जाना प्रारम्भ हुआ है; जैसे– पत्थर के साथ धातु, प्लास्टिक फाइबर–ग्लास आदि का उपयोग। आधुनिक तकनीक में **'इन्स्टोलेशन तकनीक'** को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

भवन–निर्माण कला–

आदिम मानव **'गुफाओं की कन्दराओं'** में निवास करता था। तत्पश्चात् उसने घास–फूस व मिट्टी के घर बनाने प्रारम्भ किये व पत्थर आदि के प्रयोग से **'विशाल मन्दिरों'** आदि का निर्माण किया। आज भवन निर्माण की नवीन सामग्रियाँ बाजार में उपलब्ध हैं। नवीन पद्धतियाँ विकसित हो चुकी हैं। आज मशीनों के माध्यम से विशाल इमारतों व भवनों का निर्माण किया जा रहा है। भवन निर्माण की सामग्री में ईंट, पत्थर, चूना, रंग, काँच, प्लास्टिक, लकड़ी, बाँस, लोहा व अन्य धातुओं का प्रयोग किया जा रहा है व आधुनिक तकनीकों का विकास किया जा रहा है।

प्रदर्शनकारी कलाएँ–

दृश्य कलाओं की ही भाँति प्रदर्शनकारी कलाओं में उपयोग में लाए जाने वाली सामग्रियों व माध्यमों में भी परम्परागत रूप प्राप्त होते हैं। गायन की दृश्य सामग्री उसके साथ संगत करने वाले **'वाद्य यंत्र'** होते हैं जिनसे गायन व वादन किया जाता है। संगीत में परम्परागत रूप से– सितार, गिटार, पियानो, तबला, मृदंग, वीणा, रुद्रवीणा, घोटम, ढोलक आदि उसकी दृश्य सामग्रियाँ हैं जिनके अभाव में गायन व नर्तन आदि नहीं हो सकता है। आधुनिक समय में गायन–नर्तन आदि में भी नवीन तकनीकें विकसित की जा रही हैं जिनके लिए नवीन माध्यम जैसे– **'ऑडियो–वीडियो'** तकनीक आदि का इस्तेमाल किया जा रहा है। बाजार में सीडी, वीसीडी आदि का चलन बढ़ रहा है। **'सिनेमा'** व **'नाटक'** भी प्रदर्शनकारी कलाओं के अन्तर्गत आते हैं और समय के साथ–साथ इनके प्रदर्शन की तकनीकों में अत्यन्त विकास व सुधार हुआ है। संगीत में **'फ्यूजन'** तकनीक का विकास हुआ जिसमें अनेक प्रकार के वाद्ययंत्रों व गायकी का मिश्रण कर उसे प्रस्तुत किया जाता है। संगीत में इस तकनीक को सर्वप्रथम **स्व. पं. श्री रविशंकर** (प्रसिद्ध सितार वादक) ने सर्वप्रथम प्रारम्भ किया। इस प्रकार की नवीनतम तकनीक को वही प्रस्तुत कर सकता है जिसे अपने संगीत में महारत हासिल हो।

दृश्य कलाओं की प्रायोगिकता – पारम्परिक और आधुनिक तकनीकें, प्रक्रियाएँ एवं प्रस्तुतियाँ

(Technicalities of Visual Arts – Traditional and Modern techniques, processes and procedures)

चित्रकला के अन्तर्गत पारम्परिक और आधुनिक तकनीकें, प्रक्रियाएँ व प्रस्तुतियाँ–

चित्र बनाने के लिए जलरंग, तैलरंग व एक्रेलिक आदि रंगों का प्रयोग किया जाता है। इनके प्रयोग की तकनीक भिन्न–भिन्न होती हैं जिनकी जानकारी अति आवश्यक होती है।

जलरंग तकनीक–

'शुद्ध जलरंग' तकनीक में रंगों की पारदर्शिता का उपयोग ही इसकी प्रमुख विशेषता है। जलरंग के अन्तर्गत उज्ज्वल और प्रकाशित तानों को कागज पर बिना कोई रंग दिये हुए उन्हें श्वेत ही छोड़कर प्रदर्शित की जाती हैं। हल्की तानों को पहले लगाकर धीरे–धीरे गहरी तानों की ओर बढ़ा जाता है। इसमें ब्रश द्वारा रंग की अत्यन्त पतली पारदर्शक पर्त एकसार लगाई जाती है और सूख जाने पर ही दूसरे **कलर–वॉश** लगाये

जाते हैं। इस प्रकार इच्छित प्रभाव प्राप्त किया जा सकता है। अधिक बड़े क्षेत्रों में एक समान कलर–वॉश लगाने के लिए कागज को पहले से ही **'नम'** करके बड़े ब्रश के द्वारा लगाये जाते हैं। कलर वॉश लगाने के लिए **'वॉश–ब्रश'** का प्रयोग करना उपयुक्त रहता है तथा **उत्तम कोटि के जलरंगों तथा कागज** आदि का प्रयोग करना आवश्यक होता है।

परम्परागत तकनीक या वॉश तकनीक–

प्रारम्भ में कागज को नम करके टेप द्वारा बोर्ड पर पेस्ट कर लिया जाता है। कागज के सूख जाने पर उस पर प्रारम्भिक रेखांकन हल्के रंग से किया जाता है। रंग लगाने की प्रक्रिया में पूरे चित्र में पहले हल्की तानों वाले रंगों के पतले वॉश लगाये जाते हैं। पूरा चित्र सूख जाने के बाद इसे पानी से धो दिया जाता है। इससे जो रंग कागज द्वारा शोषित कर लिया गया है वह उस पर रह जाता है तथा शेष अनावश्यक रंग निकल जाता है। **गीली अवस्था में ही कोमल ब्रश द्वारा रगड़ कर प्रकाशित स्थानों को रेखांकित किया जा सकता है।** क्रमिक वॉश द्वारा **'छाया तथा प्रकाश'** का प्रभाव भी दिया जा सकता है। इसी प्रकार पूरे चित्र पर एक ही रंग के पारदर्शक वॉश से चित्र के सभी रंगों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। यह क्रिया जलरंग में **'ग्लेज़िंग'** कहलाती है। रंगतों की पारदर्शिता व कागज की स्वच्छता की झलक नीचे से दिखाई देना इसके प्रधान गुण हैं। चित्र में रंगों का कार्य पूर्ण हो जाने पर उसका अन्तिम रेखांकन किया जाता है। इसके बाद वॉश नहीं दिये जा सकते। यह वॉश–तकनीक एक परम्परागत व रीतिबद्ध तकनीक है तथा आधुनिक समय में यह अधिक लोकप्रिय नहीं रह गई है क्योंकि प्रयोगधर्मी कलाकार इस प्रकार की परम्परा व नियमों में बँधकर काम नहीं करना चाहते हैं। आधुनिक समय में जलरंग तकनीक से अधिकांशतः **लैण्डस्केप** चित्रण किया जाता है। बंगाल में यह तकनीक बहुत लोकप्रिय है। **अवनीन्द्र नाथ ठाकुर** ने चीनी–जापानी व भारतीय चित्रण विधियों के मिश्रण के वॉश–तकनीक के अन्तर्गत अनेक चित्र बनाये। राजस्थान प्रदेश में **श्री राम जायसवाल** जल–रंगों से लैण्ड–स्केप चित्रण के विशेषज्ञ चित्रकार कहे जा सकते हैं।

जलरंग में स्ट्रोक्स व ड्रिप तकनीक–

जल रंग चित्रण में **गीले पर गीली** (Wet-on-Wet) तकनीक एक बहुत ही सुन्दर और प्रभावकारी तकनीक है जिसके अन्तर्गत कागज पर लगाये गये रंग के गीले रहते हुए ही ऊपर से **रंग स्ट्रोक्स** अथवा **ड्रिप तकनीक** के माध्यम से लगाये जाते हैं। इस तकनीक से लगाये गये रंग सरलता से दूसरे रंगों के साथ घुल जाते हैं और उसकी किनारियाँ बहुत ही **मुलायम** (Soft) होती हैं। **जल, बादल अथवा आकाश** आदि के चित्रण में इस तकनीक को अधिकांशतः काम में लाया जाता है इससे इनमें प्रकाश के परिवर्तित करने की क्षमता होती है। इस तकनीक के लिए अधिक **मोटे पेपर** (Heavy grade paper) की आवश्यकता होती है।

गीले पर गीली तकनीक से काम करते समय चित्रकार को बहुत अधिक पक्के इरादे वाला (Confident) बनना पड़ता है उसे एक–एक स्ट्रोक को सोच–समझकर लगाना होता है। **'बूँद–बूँद कर रंग को टपकाना'** भी इसी में शामिल है रंग इससे स्वतः ही धरातल पर फैलते हैं और कहीं हल्के व कहीं गहरे प्रभाव छोड़ देते हैं। चूँकि रंगों को स्ट्रोक्स अथवा बूँद–बूँद कर टपकाकर गीले धरातल पर लगाना होता है अतः रंग को गाढ़ा रखना चाहिए और पानी कम से कम मिलाना चाहिए क्योंकि रंगों में पानी की मात्रा अधिक होने से सूखने के पश्चात् रंग फीके व बेजान हो जाते हैं परन्तु गाढ़े रंग सूखने पर भी अपनी चमक को नहीं खोते हैं जबकि वे दिखने में बहुत ही मुलायम प्रभाव छोड़ते हैं। इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि जब रंग गीले होते हैं वे गहरे दिखाई देते हैं परन्तु सूखने पर वही रंग हल्के हो जाते हैं।

टैम्परा चित्रण (Tempera Painting) तकनीक–

'टैम्परा' शब्द का तात्पर्य किसी वस्तु को दृढ़ता और लचक प्रदान करना होता है। टैम्परा का मुख्य गुण इसका **इमल्शन** (Emulsion) होना है। इमल्शन में पानी तथा तेल का अंश मिलकर एक मिश्रण हो जाते हैं।

टैम्परा चित्रण सूखे तल पर भी किया जा सकता है। टैम्परा रंगों को पानी में घोटकर चौड़े मुँह की बोतलों में रखा जाना चाहिए और चित्रण प्रारम्भ करते समय इनमें इमल्शन मिलाना चाहिए।

टैम्परा चित्रण की निम्नलिखित तीन विधियाँ प्रचलित हैं–

1. बिना वॉर्निश किया गया टैम्परा (Unvarnished Tempera)– इस विधि में जल रंग की भाँति पानी मिलाकर रंग को पतला करके सूखी अथवा गीली सतह पर चित्रण कार्य किया जाता है। **पोस्टर चित्रण** तथा दीवार पर **सीको** विधि में भी इसे काम में लिया जाता है।

2. वॉर्निश किया गया टैम्परा (Varnished Tempera)– टैम्परा से बने चित्र पर **'वॉर्निश'** करने से रंग पारदर्शक हो जाते हैं और उनमें सामंजस्यपूर्ण प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। चित्र के विभिन्न भागों के रंगों में एकरूपता स्थापित किये जाने के लिए वॉर्निश का प्रयोग होता है। **पिघला हुआ मोम वॉर्निश के लिए काम में लाया जाता है।** यह स्थाई और चमकदार साथ ही आकर्षक प्रभाव देता है।

3. तैल चित्रण के नीचे की परत में टैम्परा का प्रयोग– तैल–चित्रण के नीचे की परत में टैम्परा रंगों को प्रयोग करते समय **'प्रकाशित'**, **'उदासीन'** व **'अपारदर्शक'** रंगों को लगाना चाहिए। रंग पतले इमल्शन जैसे लगाये जाने चाहिए जो तुरन्त प्रभाव से सूख जाते हैं और तैल रंगों में कार्य करने की सुविधा प्रदान करते हैं। टैम्परा रंगों के द्वारा

चित्रण तल पर टेक्सचर के विभिन्न प्रभाव उत्पन्न किये जा सकते हैं। दो अथवा तीन माध्यमों को एक ही चित्र में प्रयुक्त करने की तकनीक को **'मिश्रित माध्यम'** (mixed media) तकनीक कहा जाता है।

तैल चित्रण प्रक्रिया :

तैल–चित्रण का आविष्कार 15वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यूरोप में हुआ। तभी से चित्रकला का यह माध्यम विश्वभर में सर्वाधिक लोकप्रिय हो गया है, जिसे **'कपड़ा'**, **'काष्ठ'** अथवा **'भित्ति'** पर सरलता से उपयोग में लाया जा सकता है। तैल चित्रण प्रक्रिया में परम्परागत रूप से रंगों के चूर्ण में **'अलसी का तेल'** मिलाकर घोटा जाता है जिससे रंग कणों में लचीलापन आ जाता है और वे चित्रण–तल पर चिपके रहते हैं। आजकल रंगों के तैयार पेस्ट ट्यूब में मिलते हैं जिनको आसानी से उपयोग में लाया जा सकता है। इन रंगों को अधिक तरल बनाने के लिए इनमें तारपीन का तेल मिलाया जाता है। तैल रंग गाढ़े व अपारदर्शी होते हैं तथा देर में सूखते हैं। अतः इन्हें जल्दी सुखाने की प्रक्रिया में स्टेण्ड ऑयल एवं वॉर्निश का प्रयोग किया जाता है। कुछ कलाकार चित्र के पूर्ण होने पर तथा पूर्णतया सूख जाने पर ऊपर से वॉर्निश का प्रयोग करते हैं जिससे सम्पूर्ण चित्र धरातल पर चमक आ जाती है। तैल चित्रण के लिए पैलेट पर रंग निकालकर पैलेट नाइफ से मिलाने के बाद हॉग–हेयर ब्रश, सेबल हेयर ब्रश अथवा सीधे नाइफ से भी रंग लगाये जाते हैं। पेन्टिंग नाइफ से **'इम्पेस्टो'** (रंगों की मोटी परत) टैकनीक भी प्रयोग में लाई जाती है। ये रंग जल रंगों की अपेक्षा अधिक स्थाई होते हैं तथा जल्दी नहीं सूख जाने के गुण के कारण इन रंगों में टैक्सचर डालने व रंगों में भी पर्याप्त फेरबदल की संभावनाएँ रहती हैं। तैल चित्रण का प्रारम्भिक रेखांकन चारकोल अथवा पतले रंग से किया जाना चाहिए। तैल रंगों में **'निम्न मान'** (dark colours) से **'उच्च मान'** (Light colours & High lights) की रंगतों का प्रयोग किया जाना चाहिए। रंगों को चित्र धरातल पर हल्के हाथ के प्रयोग द्वारा लगाया जाना चाहिए जिससे नीचे के रंग ऊपर लगाये जाने वाले रंग की तानों में घुले–मिले नहीं और दोनों के प्रभाव स्पष्ट दिखाई दें। तैल रंगों को पेस्ट के रूप में ही लगाया जाना चाहिए। अधिक तेल मिलाने से रंग अपनी शुद्धता को नष्ट कर देते हैं। तैल रंगों को तूलिकाघातों के द्वारा ही लगाया जाना श्रेष्ठ होता है। परत के ऊपर परत लगाना अथवा तूलिका घात से रंग की परतें लगाना अर्थात् इम्पेस्टो तकनीक प्रयोग में लाना भी आधुनिक तकनीक में सम्मिलित है। ये रंग **'अपारदर्शक'** होते हैं। इनमें तैल मिलाकर इन्हें पारदर्शी भी बनाया जा सकता है।

ग्लेज़िंग तकनीक (Glazing Technique) :

तैल रंग में पारदर्शिता व चमक लाने को 'ग्लेज़िंग' करना कहते हैं। इससे चित्र में प्रकाश का प्रभाव दिखाई देता है। ग्लेज़ में अण्डर–पेन्टिंग के चित्रण में हल्के रंगों

की तानों का प्रयोग किया जाना चाहिए। ग्लेज़ की क्रिया बार–बार रंगने की क्रिया की भाँति ही है जिसमें हल्की तानों को ही गहरी रंगत दी जाती है। ग्लेज़ से चित्र में शीशे जैसा प्रभाव व चमक उत्पन्न हो जाती है। इसके लिए वार्निश अथवा तारपीन का तेल प्रयोग में लाया जाता है। गहरे तथा प्रकाशित क्षेत्रों पर एक जैसा ग्लेज़ लगाना चाहिए। प्राचीन काल में चित्रकार कई–कई बार ग्लेज़ करते थे।

इम्पेस्टो तकनीक अथवा पर्तों में रंग लगाने की तकनीक (Impasto technique or Painting in layers) :

चित्र धरातल पर प्रारम्भिक रेखांकन तथा उसकी **मॉडलिंग** प्रारम्भिक स्तर (under painting) में ही पूर्ण करके रंगों के उन हल्के प्रभावों के ऊपर से चित्रण के बड़े क्षेत्रों में मोटे रंग परतों के रूप में लगाने को ही **इम्पेस्टो** अथवा पर्तों में रंग लगाना कहते हैं। इसमें चित्र को प्रारम्भ से पूर्ण प्रभाव दिया जाता है। ऊपरी पर्तें इस प्रकार लगाई जानी चाहिए कि जिससे नीचे की पर्तें नष्ट अथवा धुंधली नहीं पड़ें। इसके लिए रंग की निचली पर्त के सूख जाने के बाद ही ऊपरी पर्त लगाई जानी चाहिए। इसीलिए नीचे की पर्त को टेम्परा तकनीक में भी बनाया जा सकता है। अतः उसके जल्दी सूख जाने पर ऊपरी परतों को मोटी रंग की परतों में लगाना आसान हो जाता है।

तैल चित्रण में वॉर्निश तकनीक :

वॉर्निश करने के लिए चित्र का पूर्णरूप से सूख जाना आवश्यक होता है। यदि निचली परतों में भी रंग नहीं सूखा होगा तो ऊपर के रंगों के चटखने का खतरा रहता है। सर्वप्रथम किसी मुलायम कपड़े से चित्र पर से धूल के कणों को साफ कर देना चाहिए। तत्पश्चात् चौड़े ब्रश से पतला वॉर्निश किया जाना चाहिए। वॉर्निश के लिए वॉर्निश, मैस्टिक या डैमर को तारपीन के तेल में पतला करके उपयोग में लाना चाहिए। **'मैट फिनिश'** (जिसमें चमक न हो) लाने के लिए शुद्ध मोम को तारपीन के तेल में घोलकर वॉर्निश में मिलाया जाता है।

मूर्तिकला (Sculpture) :

'मूर्तिकला' कला का वह रूप है जिसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष रूप से वास्तविक स्पेस (space) के साथ प्रयोग किये जाते हैं, जो **'त्रिआयामी'** रहते हुए ही वास्तविक स्पेस अथवा स्थान को घेरती है। एक मूर्ति ठोस हो सकती है अथवा पर्यावरण के अन्तर्गत रखी आकृति, यह **पोली** हो सकती है, **रेखीय** अथवा **छिद्रयुक्त** हो सकती है। क्योंकि मूर्ति का वास्तविक अस्तित्व होता है। एक मूर्तिकार को कल्पना और प्रत्यक्ष को अपने प्रयोगों में उतारना होता है जिसमें तकनीकी निपुणता का होना आवश्यक समझा जाता है।

चारों ओर से देखी जा सकने वाली मूर्ति को विभिन्न कोणों से जाँचा–परखा जा सकता है। अतः उसे चारों ओर से एक समान गढ़ा जाता है। मूर्ति निर्माण की तीन मूल तकनीकें होती हैं– **कारविंग, मॉडलिंग** और **बिल्डिंग** या **कन्स्ट्रक्शन**। इनमें कारविंग और मॉडलिंग प्राचीन तकनीकें हैं जो मूर्ति निर्माण की परम्परागत तकनीकें हैं जबकि कन्स्ट्रक्शन को बीसवीं शताब्दी में पूर्णतया अपना लिया गया है।

उपर्युक्त तीन तकनीकों के साथ ही **कास्टिंग** भी मूर्ति निर्माण की तकनीक के अन्तर्गत आती है परन्तु यह एक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है न कि मूल तकनीक।

कारविंग (Carving) :

इससे तात्पर्य है 'कटाई–छँटाई' करना, जिसके अन्तर्गत ठोस पत्थर अथवा मिट्टी को काटकर, छीलकर और छाँटकर मूर्ति को आकार देना स्थान रखता है। लकड़ी और पत्थर में बड़ी व छोटी आकृतियों की कटाई–छँटाई की जा सकती है और यदि जरूरत हो तो कुछ हिस्सों को जोड़ा भी जा सकता है। जबकि हाथी दाँत और मूल्यवान पत्थरों में सदैव छोटी मूर्तियाँ ही गढ़ी जाती हैं। मूर्ति के आकार व विशेषताओं को उसकी सामग्री और टेक्सचर के द्वारा ही निश्चित किया जा सकता है; जैसे– **'ग्रेनाइट पत्थर'** में सरल आकार गढ़ने के लिए भी बहुत मेहनत करनी होती है। मार्बल भी सख्त होता है और उसमें आकार की बारीकियाँ दिखाई जा सकती हैं परन्तु **'कारविंग'** या कुराई करते समय वह खिर सकता है क्योंकि उसमें पत्थर जैसी मजबूती नहीं होती है। परन्तु बहुत सी पत्थर की मूर्तियों में भी बाहुओं को शरीर के बहुत ही पास में कुरेरा जाता है और टखनों आदि के पास भी सहारा देने के लिए दूसरा पत्थर लगाया जाता है क्योंकि मूर्ति का सम्पूर्ण वजन पैरों पर ही होता है। **'माइकेल ऐन्जिलो'** और **'बेरनिनि'** जैसे महान मूर्तिकारों के कामों में हम मूर्तिकला की बारीकियों को आसानी से देख सकते हैं। लकड़ी पत्थर की अपेक्षा अधिक लचीली और रेशेयुक्त होती हैं। अतः लकड़ी की खुदाई के काम को हम गोथिक कालीन गिरिजाघरों में भलीभाँति देख सकते हैं। आधुनिक काल में ब्रिटिश मूर्तिकार **'हेनरी मूर'** ने अपनी लकड़ी, पत्थर व संगमरमर आदि की मूर्तियों में विभिन्न **'कोण'** और **'स्थान'** (space) को महत्त्व दिया है।

मॉडलिंग (Modelling) :

'मॉडलिंग' एक जोड़ने की प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत **'क्ले'** (मिट्टी) और **'मोम'** (wax) जैसे मुलायम और लचीले पदार्थों को कम से कम उपकरणों की सहायता से सीधे ही आकार दिया जाता है। **मॉडलिंग में एक मूर्तिकार को कारविंग की अपेक्षा अभिव्यक्ति की अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है।** मॉडलिंग की सामग्री को हर प्रकार का आकार दिया जा सकता है और उस पर एक मूर्तिकार का पूर्णरूपेण अधिकार होता है चाहे वह भीतरी आकार हो अथवा बाहरी, और सन्तुष्टि न होने पर उसे तोड़कर पुनः पूरी प्रक्रिया को फिर से दोहराया जा सकता है।

मॉडलिंग में आकार की साइज, आकृति और विस्तार में भी कारविंग से अधिक विविधता है। मिट्टी को आकार व सहारा देने वाला **'ढाँचा'** (armature) भी अधिक मजबूत होता है तथा इसके लिए कोई बाहरी सहारे की आवश्यकता नहीं होती है।

'टेराकोटा' के अन्तर्गत बनाये जाने वाले भीतर से **'पोला'** (Hollow) रखे जाने वाली तकनीक एक भिन्न तकनीक है। इसमें कोई भीतरी सहारा नहीं होता है। अतः आकार को स्वयं ही मजबूत होना होता है। पोले आकार की टेराकोटा मूर्तियों को सुखाकर भट्टी में पकाया जाता है जिससे इसकी सामग्री को अधिक स्थिरता दी जा सके व उसे अधिक टिकाऊ बनाया जा सके। इसके ऊपर **रंगीन ग्लेज़** देकर उसके धरातल को चमकदार भी बनाया जा सकता है। क्ले और मोम के मॉडल को **धातु** (Metal) में **कास्ट** (Cast) किया जाता है जिससे मजबूत और अधिक फिनिश के साथ मूर्तियाँ बनाई जा सकें। **कास्टिंग आकार की पूर्णतया आवृत्ति करता है और सामग्री के वास्तविक रंग और टेक्सचर को उभारता है।**

कन्स्ट्रक्शन अथवा बिल्डिंग (Construction or Building) :

'कन्स्ट्रक्शन' से तात्पर्य है– रचना अथवा निर्माण करना। कन्स्ट्रक्शन वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत विभिन्न भागों से एक सम्पूर्ण मूर्ति का निर्माण किया जाता है जो कि या तो एक ही प्रकार की सामग्री से निर्मित की गई हो अथवा भिन्न–भिन्न सामग्रियों से। मूर्ति निर्माण के क्षेत्र में यह विस्तार **'20वीं शताब्दी'** की उपलब्धि है, जबकि सामग्री और तकनीक में विकास हुआ और यह परिवर्तन **'विज्ञान'** और **'इन्डस्ट्री'** के क्षेत्र में हुई विभिन्न खोजों के परिणामस्वरूप हुआ। कन्स्ट्रक्शन के अन्तर्गत मूर्तिकला की परम्परागत रचना सामग्री को काम में लाया जा सकता है जैसे– **लकड़ी, पत्थर और धातु,** परन्तु इन्हें प्रयोग करने की तकनीक में नये विचारों को प्रधानता दी जाती है जिसमें इन सभी को एक साथ आधुनिक सामग्रियों से युक्त कर रचना की जाती है यथा– **'प्लास्टिक'** और **'फाइबर ग्लास'** इत्यादि। भारी से भारी पत्थर अथवा अन्य सामग्रियों को उठाने, जोड़ने आदि की आधुनिक तकनीकों ने प्राचीन और परम्परागत तकनीकों के बन्धन को दूर किया है और **'स्थान'** (space) और **'संख्या'** (mass) के बीच के सम्बन्ध को नई परिभाषा दी है। मूर्ति में प्रयोग किया जाने वाला **'पारदर्शी प्लास्टिक'** मूर्ति की आन्तरिक स्पेस को भी बाहर दिखाकर उसका महत्त्व बढ़ा देता है। **'औद्योगिक वेल्डिंग' तकनीक आज बहुतायत से धातु मूर्तियाँ बनाने में प्रयोग में लाई जा रही है।** ये मूर्तियाँ बहुत भारी भी हैं और स्पेस में बिना किसी सहारे के खड़ी रहती हैं। मूर्ति में पहले से बनाए गए **आकार** व **छिद्र** आदि में नई वस्तुओं को न केवल जोड़ा जा सकता है वरन् उन्हें **कच्ची सामग्री** के साथ एक नये सन्दर्भ में देखा व परखा जा सकता है। उदाहरण के लिए– आज **यान्त्रिक कलपुर्जों** को और **'लाइट के चक्र'** (circuit) (जिसके माध्यम से सम्पूर्ण मूर्ति

में रोशनी प्रवाहित की जाती है) इत्यादि को मूर्ति में लगाया जा सकता है। नये मटीरियल और तकनीक ने मूर्तिकारों को मूर्तिकला के नये आयाम और नई सम्भावनाएँ प्रदान की है जिससे वे प्राकृतिक सामग्रियों को नये परिवेश के साथ प्रस्तुत कर सकें।

कास्टिंग (Casting) :

'कास्टिंग' से तात्पर्य है धातु को ढालकर मूर्ति का निर्माण करना। यह वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मूर्ति का अधिक टिकाऊ सामग्री व भिन्न तरीके से **'पुनर्निर्माण'** किया जाता है। जो मूल सामग्री से अधिक टिकाऊ होता है। धातु से मूर्ति निर्माण के कुछ प्रकारों में वास्तविक मूर्ति **'धातु की ढलाई'** की प्रक्रिया में कभी–कभी पूर्णतया समाप्त हो जाती है और यह ढलाई की तकनीक पर निर्भर करता है कि वास्तविक मूर्ति की अनेक प्रतिलिपियाँ बना ली जायें अथवा मात्र एक ही। वास्तविक मूर्ति के ऊपर ही मोल्ड का निर्माण किया जाता है और नई सामग्री में उसी के पैटर्न को सेट किया जाता है। ढलाई की परम्परागत तकनीक जो **'ब्रान्ज की ढलाई'** के लिए अपनाई जाती है उसमें **'मोम पिघलाकर'** ढलाई (Lost wax method) की जाती है। छोटी मूर्तियों की ही ठोस ढलाई की जाती है परन्तु बड़ी मूर्तियाँ भीतर से **'पोली'** (Hollow) ही ढाली जाती हैं। जल्दी टूटने वाली सामग्री और बड़ी मूर्तियाँ जिनका निर्माण पत्थर में नहीं किया जा सकता है उन्हें ढालकर बनाना सम्भव हो जाता है क्योंकि ब्रान्ज को पिघलाकर मोल्ड में डाला जाता है अतः यह वास्तविक आकार के प्रत्येक कोने और बारीकियों तक जाकर जमा हो जाता है और इस प्रकार उसी आकार में एक मूर्ति के रूप में सेट हो जाता है। अधिक कठिन आकारों को अलग–अलग टुकड़ों में कास्ट किया जाता है और अन्त में पूरी आकृति को जोड़ दिया जाता है। इसीलिए ब्रान्ज की अपनी विशेषताओं जैसे– पारदर्शी धरातल, प्राकृतिक रंग और घनत्व के कारण उसमें मूर्तियाँ ढाली जाती हैं।

'प्लास्टर' सस्ती सामग्री होता है और ढलाई के लिए आसानी से उपलब्ध हो जाता है परन्तु अधिक फिनिशिंग नहीं दे सकता है। **'ग्लास फाइबर'** रेज़िन ढलाई की अधिक आधुनिक सामग्री है जो **'मॉडलिंग'** और **'कन्स्ट्रक्शन'** दोनों ही प्रकार की तकनीकों में प्रयोग में लाया जा सकता है। यह मूर्तिकार को चमकदार रंगों में मूर्ति ढालने में सहायता प्रदान करता है। फाइबर ग्लास में भीतर से पोली मूर्तियाँ भी ढाली जा सकती हैं जो भार में बहुत हल्की होती हैं।

मोम पिघलाकर काँसे की ढलाई की विधि :

'काँसे की ढलाई' के लिए मोम कोमल होते हुए भी सबसे उपयुक्त माध्यम है। जिस मूर्ति को ढालना होता है उसका **विपरीत** (negative) साँचा बना लिया जाता है जिसे प्लास्टर और ईंट के चूर्ण को मिलाकर बनाया जाता है। इस साँचे में गलाए गए मोम की

एक समान मोटी परत जमा दी जाती है। तत्पश्चात् बाकी बचे हुए खोखले भाग में पुनः प्लास्टर और ईंट का चूर्ण भर दिया जाता है। इस क्रिया को **'कोर'** कहते हैं जिसमें हवा के लिए कोई भी जगह नहीं छूटनी चाहिए। बाहरी साँचा और कोर ढीला न हो जाए इसके लिए इसमें कहीं–कहीं पर कील लगा दी जाती है। द्रव्य को मूर्ति के साँचे में ढालने के लिए **'छिद्र'** (Hole) बनाया जाता है। साँचे के सूख जाने के पश्चात् उसे **'भट्टी'** (Furnace) में गर्म किया जाता है। गर्म होने पर मोम पिघलकर उड़ जाता है और मोम वाला स्थान खाली हो जाता है। अब काँसे के टुकड़ों को गलाया जाता है जिससे वह गलकर लाल रंग का हो जाता है। इस गले हुए द्रव्य को छिद्र के भीतर सावधानीपूर्वक ढाला जाता है। काँसे के ठण्डा हो जाने पर साँचे को हटा लिया जाता है। इस प्रकार मूर्ति बनकर तैयार हो जाती है जिसकी खुरदरी सतह को पॉलिश कर चिकना बना दिया जाता है।

छापा–चित्रण तकनीक (Print-making Technique) :

'छपाई' के लिए सतह, जिसे स्याही लगाकर कागज पर प्रतिरूपित किया जा सके, तीन प्रकार की तकनीकों से तैयार की जाती है। **स्याही को 'उभरी हुई', 'उत्कीर्ण' की गई अथवा 'समतल' सतह पर लगाया जाता है तथा उसका छापा लिया जाता है।** इस प्रकार छपाई की निम्न तीन तकनीक हैं–

1. उभरी सतह की छपाई (Relief Method)

इसके अन्तर्गत जिस सतह को छापा जाना है उसके शेष भाग को काट कर नीचे दबा दिया जाता है। अब एक **सख्त रोलर** के माध्यम से इस धरातल पर स्याही लगाई जाती है तथा कागज को ऊपर रखकर उसे **रगड़कर** अथवा **प्रिन्टिंग मशीन** के दबाव से प्रिंट ले लिया जाता है। उभरी हुई सतह, जिस पर स्याही लगी रहती है का प्रिंट कागज पर उभर आता है। **'काष्ठ धरातलीय'** छापा चित्रण अथवा **'लिनोलियम'** छापा–चित्रण इसके उपयुक्त उदाहरण हैं।

2. अन्तःसतह छपाई प्रणाली (Intaglio Method)

इससे तात्पर्य है 'इन्ग्रेव' करना अथवा 'काटना'। इस तकनीक के अन्तर्गत विभिन्न धातुओं की प्लेट को **'तेजाब'** की सहायता से गहराई तक काटा जाता है। इस कटी हुई सतह पर स्याही का लेप करने के बाद उसे सतह पर से पोंछ कर साफ किया जाता है। इस प्रकार स्याही केवल इन्ग्रेव किये गए स्थान पर ही रह जाती है और उठे हुए स्थान पर से साफ हो जाती है। इसके पश्चात् **'नम किए गए कागज'** को उस पर रख दिया जाता है और ऊपर से नमदे से ढकने के पश्चात् मशीन के समान दबाव के द्वारा छापा लिया जाता है। नम होने के कारण कागज गहरे कटे स्थान तक चला जाता है और स्याही का छापा उठा लेता है। **'ताँबे'** व **'जिंक प्लेट'** से छपाई अन्तः सतह उत्कीर्णन के उत्तम उदाहरण

कहे जा सकते हैं। इन्टेग्लियो प्रिन्टिंग तकनीक के अन्तर्गत निम्न तकनीकें प्रचलित हैं–

ड्राई पाइंट तकनीक (Dry Point Technique)

एन्ग्रेविंग तकनीक (Engraving Technique)

अम्लांकन तकनीक (Etching Technique)

अक्वाटिंट तकनीक (Aquatint Technique)

मेजोटिंट तकनीक (Mezzotint Technique)

फोटो ऐचिंग तकनीक (Photo Etching Technique)

विस्कोसिटी तकनीक (Viscosity Technique).

3. समतल सतह प्रणाली अथवा लिथोग्राफी प्रिन्टिंग (Planography Process or Lithography Printing)

'लिथोग्राफी प्रिन्टिंग' तकनीक में 'पत्थर' तथा 'प्लेट' दोनों को ही काम में लिया जाता है। भारत में पत्थर पर लिथो तकनीक अधिक प्रचलित है। यह पत्थर **'बावेरिया'** (Bavaria) में **'जुरा'** (Jura) पर्वतों में पाया जाने वाला प्राकृतिक **'चूना पत्थर'** (Limestone) है। चित्रण के लिए इस शिला–पत्थर को तैयार करने की प्रक्रिया को **'ग्रेनिंग द स्टोन'** (Graining the stone) कहते हैं। जिस शिला पत्थर को ग्रेन करना है उसे पानी से भरे एक बड़े समतल बर्तन में जमा दिया जाता है जो पानी के सतह से ऊपर होता है। पानी से अच्छी प्रकार धोकर इसकी गीली सतह पर लगभग एक चम्मच **समुद्र या नदी की महीन रेत** का छिड़काव कर देते हैं अथवा **'करण्ड'** (Carborundum) को छिड़क देते हैं। इस पर उसी आकार का या छोटा पत्थर औंधा रखकर उसे गोलाई में घुमाते हुए रगड़ते हैं। बीच–बीच में पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। ऐसा तब तक करते रहना चाहिए जब तक कि दोनों पत्थर आपस में चिपकने लग जायें। अब ऊपर वाली शिला को नीचे उतारकर दोनों पत्थरों को पानी से अच्छी प्रकार धो लेना चाहिए। अब यह सम्पूर्ण प्रक्रिया फिर से दोहराई जाती है और तब तक दोहराते रहते हैं जब तक कि पत्थर पर पहले से बनाई गई ड्राइंग पूरी तरह से मिट नहीं जाती है और वह नई ड्राइंग बनाने के लिए तैयार नहीं हो जाता है। अब पत्थर की ऊपरी सतह एक चिकनी परत की भाँति दिखाई देने लगेगी।

इस तैयार की गई शिला पर चित्रण कार्य करने से पहले एक पारदर्शी पेपर पर अपने डिजाइन का **'खाका'** बना लेना चाहिए अथवा पत्थर पर सीधे ही त्रुटिहीन ड्राइंग भी बनाई जा सकती है। इसके लिए **'मोमी क्रेयन'** या **'पेन्सिल'** से वास्तविक चित्रण किया जाता है। चित्रण करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि जिस प्रकार की छवि शिला पर की जा रही है उसी की प्रतिकृति कागज पर चित्रित होती है। शिला पर ट्रेसिंग

आदि करने के लिए कार्बन पेपर का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अब पारदर्शी पेपर पर बनाए हुए खाके को उपयुक्त स्थान पर रखकर एक सख्त नुकीली पेन्सिल से बाह्य रेखाओं को ट्रेसिंग उतार देते हैं। डिजाइन तैयार हो जाने पर **'बबूल गोंद'** (Gum arabic) को साफ स्पंज या कपड़े से धरातल पर लगाकर एक दिन के लिए छोड़ देते हैं, इसे **'एच'** करना कहते हैं जिसे डिजाइन को सुरक्षित रखने के लिए किया जाता है। अगले दिन पत्थर को पानी से अच्छी प्रकार साफ करने के पश्चात् पुनः गोंद लगाने के बाद पानी से साफ कर डिजाइन पर **'रोलर'** की सहायता से स्याही लगाई जाती है। इस प्रक्रिया को धरातल के गीले रहने के दौरान ही करना होता है। अब इस स्याही लगे पत्थर पर पहले से भिगोए गए कागज को रखकर मशीन को दाब के साथ घुमाने से वांछित प्रिन्ट प्राप्त किया जा सकता है।

धातु प्लेट लिथोग्राफी (Metal Plate Lithography) :

लिथोग्राफिक शिला पत्थर अत्यधिक भारी होता है। अतः आज की अत्याधुनिक जीवन शैली में **'जिंक'** अथवा **'अल्यूमीनियम'** की प्लेट को भी शिला की ही भाँति प्रिन्टिंग योग्य बनाया जा सकता है। शुद्ध जिंक को **'ग्रेनिंग'** मशीन से रगड़कर उसे उत्तम बुनावट युक्त बनाया जाता है तथा **'फिटकरी'** से अम्लांकन किया जाता है इससे इसकी सतह चिकनाहट से मुक्त हो जाती है और प्रिन्ट आसानी से लिया जा सकता है।

सैरीग्राफ माध्यम (Silk Screen Method) :

'सैरीग्राफ' या **'सिल्क स्क्रीन'** छापा–चित्रण पूर्णतः हाथ से की जाने वाली प्रक्रिया है। रेशम के कपड़े को एक लकड़ी के फ्रेम पर कसने के बाद ऊपर **'गोंद'** या अन्य साधन से उस स्थान को बन्द कर देते हैं जहाँ प्रिन्ट नहीं करना है। तत्पश्चात् इसके ऊपर गाढ़ा रंग डालकर **'स्कूईजी'** की सहायता से रंग को दूसरी ओर खींचा जाता है। जिस स्थान पर गोंद नहीं लगा रहता उस स्थान से रंग दूसरी तरफ लगे कागज पर आ जाता है। यह एक **'स्टेंसिल'** विधि है। आजकल बहुत से कलाकार इस आधुनिक तकनीक में कार्य कर रहे हैं। इस माध्यम में भी अनेक छापाचित्र प्रिन्ट बनाये जा सकते हैं। इसके अन्तर्गत सपाट रंग आसानी से लगाए जा सकते हैं और एक से अधिक रंगों का भी आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। **इस माध्यम में पेन्टिंग की ही भाँति ब्रुश के स्ट्रोक, टेक्सचर व विभिन्न रंगतों का प्रयोग किया जा सकता है।** गहरे, चमकदार व तहदार रंगों से आसानी से प्रिन्ट लिए जा सकते हैं। 1950 में इस तकनीक में फोटो और मैकेनिकल स्टेनसिल के लिए **'हॉफटोन'** स्क्रीन को प्रयोग में लाया जाना शुरू हुआ जिसके अन्तर्गत **'फोटोग्राफिक इमेज'** को प्रिन्ट किया जाना प्रारम्भ हुआ।

भित्ति–चित्रण (Fresco) :

दीवार पर सीधी की गई चित्रकारी को फ्रेस्को कहते हैं। इसकी दो पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं– **'फ्रेस्को ब्युनो'** (Fresco Buono) और **'फ्रेस्को सीको'** (Fresco Secco)।

फ्रेस्को ब्युनो– यह शुद्ध भित्ति–चित्रण की तकनीक है। इसे **'आला–गीला'** पद्धति भी कहते हैं। इसे दीवार के **'गीली'** रहने के दौरान ही बनाया जाता है। इस प्रकार ताजी बनाई गई नम दीवार पर किये गये चित्रण को **'फ्रेस्को ब्युनो'** कहा जाता है। दीवार तैयार करने के पश्चात् उस पर सर्वप्रथम चूने और संगमरमर के चूरे का मोटा लेप चढ़ाया जाता है। इस विधि को **'आराइश'** करना कहते हैं। अब इस आराइश की गई गीली भित्ति पर चित्र का रेखांकन या **खाका** (ट्रेस) झाड़ दिया जाता है। इसके लिए खाके को भित्ति पर रखकर ऊपर से कोयले के बारीक चूर्ण को किसी कपड़े की पोटली में बाँधकर खाके पर घुमाया जाता है जिस पर पहले से ही बारीक छिद्र कर दिये गये होते हैं। इन छिद्रों के माध्यम से कोयले का चूर्ण आराइश पर उतर आता है। अब खाके को वहाँ से हटा लिया जाता है और तल पर हल्की सी फूँक मारकर कोयले को हल्का कर लिया जाता है। तत्पश्चात् **'गेरू'** की हल्की रेखाएँ बना ली जाती हैं जिसके भीतर गीले रंग चयनित स्थानों पर भर दिये जाते हैं। रंगों को दो या तीन बार लगाया जाता है जिससे कि वे एक समान दिखाई दें। रंग भर दिये जाने के पश्चात् उन्हें **'नैहल्या'** द्वारा हल्के–हल्के पीटा जाता है। रंगों को पीटने से उनमें चमक आ जाती है साथ ही वे भित्ति के भीतर तक समा जाते हैं। इस प्रक्रिया के द्वारा सम्पूर्ण भित्ति पर रंग भरने की प्रक्रिया को पूर्ण कर लिया जाता है। अब **'मलमल के कपड़े की गद्दी'** बनाकर उसे रंग की गई सम्पूर्ण भित्ति पर फिराया जाता है जिससे यदि कहीं से रंग निकलता दिखाई दे तो उसे पुनः नैहल्या द्वारा पीट कर जमाया जा सके। तत्पश्चात् बाह्य रेखाएँ व छाया–प्रकाश आदि का प्रभाव दिया जाता है और इन्हें भी नैहल्या द्वारा पीटा जाता है। आभूषणों इत्यादि विशेषकर मोती माला आदि में सफेद रंग का प्रयोग कर उसे भी नैहल्या से पीटकर जमाया जाता है। तत्पश्चात् चित्र को सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। चित्र के सूख जाने के बाद **ताजे नारियल** के सफेद भाग को थोड़े पानी के साथ घिस कर उसे हथेली से थपथपाकर चित्र पर फैलाया जाता है और उस पर मलमल की पोटली को घुमाया जाता है इससे चित्र की सतह नारियल की चिकनाहट को पकड़ लेती है और उसमें चमक आ जाती है।

फ्रेस्को ब्युनो प्रक्रिया से बनाये गये भित्तिचित्र अधिक स्थाई होते हैं **जो भित्ति में दृढ़ता से समा जाते हैं और सूखने के पश्चात् छूटते नहीं हैं।** गीली भित्ति पर कार्य करने की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं– **'जयपुर फ्रेस्को'** तथा **'इटेलियन** फ्रेस्को'। इटेलियन पद्धति में एक भाग गीला चूना व दो भाग रेत अथवा बजरी मिलाकर दीवार को

तैयार किया जाता है और गीली सतह पर ही रंग लगाये जाते हैं। जयपुर पद्धति में चूने और संगमरमर की चूरी का प्रयोग कर दीवार की ऊपरी सतह को चित्रण योग्य बनाया जाता है तथा गीली सतह पर ही रंग भरे जाते हैं।

फ्रेस्को सीको (Fresco Secco)– आराइशी भित्ति की 'सूखी सतह' पर किया जाने वाला चित्रण फ्रेस्को सीको पद्धति के अन्तर्गत स्थान रखता है। इसके अन्तर्गत बहुत सीमित खनिज रंगों को प्रयोग में लाया जाता है तथा रंगों में **'गोंद'** व **'सरेस'** को माध्यम के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इन रंगों को **'टेम्परा पद्धति'** के माध्यम से प्रयोग में लाया गया है तथा रंगों में लाजवर्द, रामरज, काजल, सफेद खड़िया, गेरू, पेवड़ी, नील, सिन्दूर व हिंगुल आदि रंगों का प्रयोग किया गया है। **भारत में 'अजन्ता' के भित्ति–चित्र इसी पद्धति से बनाए गए हैं।** परन्तु इस पद्धति में गीली पद्धति से कम स्थायित्व होता है। फ्रेस्को सीको पद्धति में सतह पर रंगों को लगाने के पश्चात् उसमें छाया–प्रकाश आदि का प्रयोग किया जाता है। तत्पश्चात् काले अथवा गहरे रंग से रेखाएँ आदि कर चित्र को पूर्ण किया जाता है।

म्यूरल (Mural) :

साधारण भित्ति पर बोर्ड, कैनवास अथवा अन्य पद्धति से किया जाने वाला चित्रण अथवा अलंकरण म्यूरल कहलाता है। इसे सीधे ही दीवार पर भी बनाया जा सकता है। इसके लिए रंगों में गोंद व सरेस का प्रयोग भी किया जाता है। यद्यपि यह तकनीक अधिक स्थायित्व देने वाली नहीं होती है। बाह्य भित्ति अथवा खुले स्थानों पर बनाए जाने वाले **म्यूरल को अधिक स्थायित्व देने के लिए सेरेमिक टाइल्स, काँच, लोहा, स्टील, कीलें, बजरी, सीमेन्ट, फाइबर–ग्लास, टेराकोटा** आदि को भित्ति पर इस्तेमाल कर म्यूरल आदि बनाए जाते हैं। जो अपेक्षा से अधिक स्थाई महत्त्व के होते हैं। बाह्य भित्तियों पर बनाए जाने वाले म्यूरल को धूप, वर्षा, आँधी आदि से बचाया जाना आवश्यक होता है। भारत में म्यूरल बनाने वाले सबसे चर्चित कलाकार **सतीश गुजराल** हैं। मिस्र के पिरामिडों की दीवारों पर वर्षों पहले म्यूरल तकनीक से चित्रण किया गया था। यूरोप में पुनर्जागरण कालीन कलाकारों ने भी गिरिजाघरों की दीवारों पर म्यूरल पद्धति से चित्रण कार्य किया। इसी प्रकार आज आधुनिक समय में यूरोप, भारत व अन्य पूर्वीय देशों में भी पारम्परिक भित्ति–चित्रण की तकनीक से हटकर भवनों, सार्वजनिक स्थानों व सरकारी भवनों में भी बाह्य व भीतरी दीवारों पर म्यूरल तकनीक से अलंकरण का कार्य किया जा रहा है।

ग्राफिक डिजाइन (Graphic Design) :

आधुनिक कला के अन्तर्गत **'ग्राफिक डिजाइन'** और **'कम्प्यूटर ग्राफिक'** डिजाइन

के प्रयोग से व्यावसायिक कला में चमत्कारिक परिवर्तन आये हैं। जो कार्य पहले **'हाथ'** से (Manual Process) किये जा रहे थे वही अब कम्प्यूटर से तीव्र गति से किया जाना संभव होने से कार्य में तीव्रता व गतिशीलता आई है। कम्प्यूटर से ही अब **'कम्पोजिंग'**, **'रेखांकन'** व **'ले–आउट'** डिजाइन तैयार करना, विभाजन, रंगीन टाइपिंग, हैडिंग व टाइटल तैयार करना, कवर डिजाइन आदि कार्य सरलता से किये जा रहे हैं।

ग्राफिक डिजाइन को पुनरुत्पादित करने व उसे प्रचारित–प्रसारित करने से पहले विभिन्न प्रक्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता है जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है– **'डिजाइन का निर्माण'** जिसका मूल उद्देश्य है– **'सम्प्रेषण'। जब एक व्यक्ति किसी समूह को संदेश देता है तो वह कहलाता है– 'वृहद–सम्प्रेषण'** (Mass Communication) सम्प्रेषण के लिए – विज्ञापन, फिल्म, दूरदर्शन, पत्र–पत्रिकाओं, पैकेजिंग, कम्प्यूटर ग्राफिक आदि माध्यमों का उपयोग किया जाता है। सम्प्रेषण की इस प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण होते हैं–

– विज्ञापन कर्त्ता (Client अथवा Source)

– सन्देश का सरलीकरण (Decoding)

– माध्यम या चैनल (Channel)

– प्राप्तकर्त्ता या लक्षित पाठक (Receiver)

ग्राफिक डिजाइन के निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत **डिजाइन अथवा समस्या के समाधान के लिए रूपरेखा तैयार करना;** जैसे– सम्भावित उपभोक्ता कौन हैं, उसका लक्ष्य, बजट, निश्चित समयावधि आदि क्या हैं? आदि की भी जानकारी होना आवश्यक है। ग्राफिक डिजाइन के निर्माण में **'दृश्य पारिस्थितिकी'** का ज्ञान होना भी आवश्यक है। यह डिजाइन की पूर्व तैयारी से सम्बन्धित बिन्दु हैं।

डिजाइन निर्माण के आवश्यक बिन्दु हैं–

1. कॉपी लेखन– विज्ञापन के लिए अक्षरों का सृजन।

2. ले–आउट– विशिष्ट स्थान के अन्तर्गत डिजाइन के तत्त्वों के आधार पर संयोजन करना।

3. टाइपोग्राफी/फोटोग्राफी– विज्ञापन के अन्तर्गत पाठ्य–सामग्री के टाइप को डिजाइन के रूप में प्रस्तुत करना। फोटोग्राफी करने के बाद उसे कल्पना का पुट देते हुए डिजाइन का स्वरूप देना।

4. यान्त्रिक सहायता से आर्ट–वर्क– कलाकार अपने डिजाइन को जो कल्पना से स्वरूप प्रदान करता है उसे कम्प्यूटर के विशिष्ट डिजाइन प्रोग्राम यथा– 'कोरल ड्रॉ'

(Corel Draw), **'अडोब फोटोशॉप'** (Adobe Photoshop) और **'अडोब इलस्ट्रेटर'** (Adobe Illustrator) की सहायता से अन्तिम स्वरूप प्रदान करता है और विज्ञापन कर्त्ता की अन्तिम स्वीकृति के पश्चात् ग्राफिक रिप्रोडक्शन करने के लिए उसे प्रेस में छपने के लिए भेज दिया जाता है। इस प्रकार डिजाइन की हजारों प्रतियाँ छपकर तैयार हो जाती हैं तब उन्हें दूरदर्शन, अखबार, फिल्म आदि मीडिया के साधनों में प्रसारण हेतु भेज दिया जाता है जिसके माध्यम से वह एक सन्देश का रूप ग्रहण कर दर्शकों व पाठक वर्ग तक पहुँचता है।

मुद्रण :

मुद्रण के अन्तर्गत एक रंग से मुद्रण का अर्थ सामान्यतः सफेद कागज पर काली स्याही से किये गये मुद्रण से लिया जाता है परन्तु किसी अन्य रंग की स्याही से भी मुद्रण किया जा सकता है।

चार रंगों में किये जाने वाले मुद्रण को 'प्रोसेस कलर' (Process Colour) मुद्रण भी कहा जाता है। इस पद्धति में डिजाइन के सभी रंगों को चार–रंगों **'स्यान, मैजेन्टा, पीला, और काला'** (Cyan, Magenta, Yellow and Black) रंगों में विभाजित कर छापा जाता है। विभाजन के पश्चात् चारों रंगों की अलग–अलग चार प्लेटें बनाकर तत्पश्चात् उनसे मुद्रण किया जाता है। इस प्रक्रिया को मुख्यतः दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

(i) समतल रंग (Flat Colours)

(ii) सतत तान वाले रंग (Continuous Tone Colours)

डी.टी.पी. – लेजर मुद्रण

यह एक आधुनिक मुद्रण प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत **काल्पनिक** इमेज को कम्प्यूटर मैमोरी के द्वारा प्रिंटर के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। यह किसी भी प्रकार के आर्ट–वर्क को प्रिन्ट करने की सुविधा प्रदान करता है। इसमें कम्प्यूटर के द्वारा किसी भी प्रकार के आर्ट–वर्क एवं टाइप फेस को अपने तरीके से बिना समय गँवाये सैट किया जा सकता है। डी.टी.पी. द्वारा पेज सैटिंग एवं डिजाइन में भी सहायता मिलती है।

कम्प्यूटर द्वारा डिजाइन बनाना–

आज प्रिन्टिंग से पहले कम्प्यूटर द्वारा डिजाइन पूर्ण कर लेने के पश्चात् ही मुद्रण के लिए प्रेस में भिजवाया जाता है। डिजाइन बनाते समय सबसे पहले कम्प्यूटर में डिजाइन के पेज का **'ले–आउट'** बनाया जाता है। तत्पश्चात् कॉपी राइटिंग व मैटर के लिए टाइप फेस चयनित कर मैटर को पृष्ठ में व्यवस्थित किया जाता है। साथ ही डिजाइन के अन्तर्गत

प्रयोग में लाये जाने वाले चित्र अथवा इलस्ट्रेशन या अन्य सामग्री को **'स्कैनर'** के माध्यम से स्कैन कर कम्प्यूटर में डाला जाता है। चित्र या इलस्ट्रेशन को सीधे ही फोटोशॉप आदि के माध्यम से भी कम्प्यूटर में बनाया जा सकता है। उपर्युक्त सभी तत्वों को ले-आउट के अन्तर्गत संयोजित कर डिजाइन तैयार किया जाता है। कम्प्यूटर द्वारा तैयार किये गये इस डिजाइन को कम्प्यूटर मॉनीटर पर ध्यानपूर्वक देखने के पश्चात् उसमें आवश्यक सुधार करके उसके प्रिन्टर द्वारा उस डिजाइन का एक **'प्रिन्ट'** (हार्ड कॉपी) तैयार कर लिया जाता है।

इस प्रकार डिजाइन निर्माण से मुद्रण तक की प्रक्रिया निम्न प्रकार से रहती है–

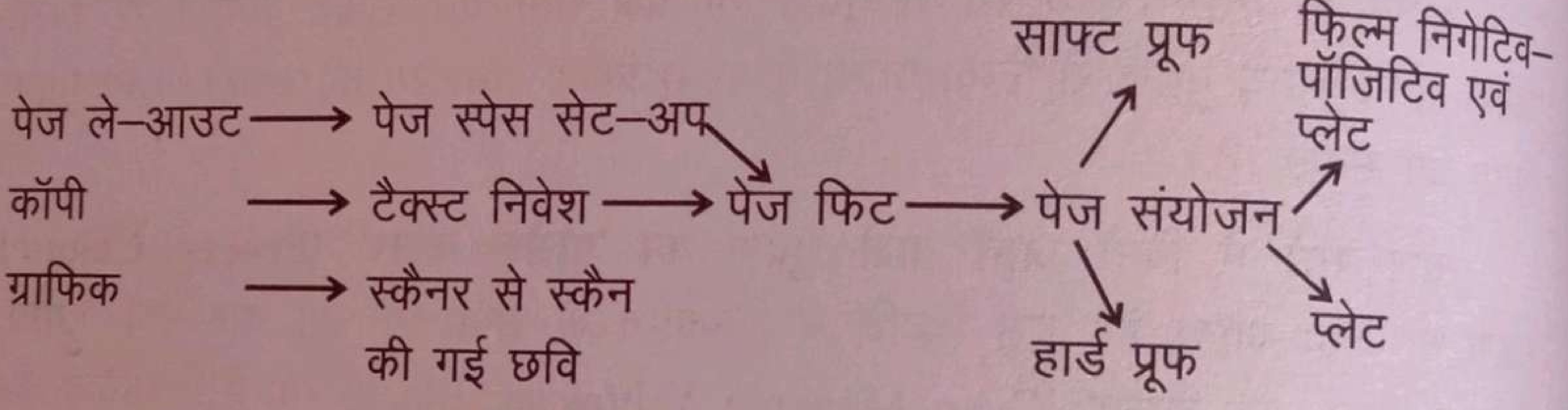

कम्प्यूटर द्वारा तैयार किये गये डिजाइन के पेज को प्रेस में भेजने से पूर्व निम्न तथ्यों का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए–

1. डिजाइन को एक पेज ले-आउट बनाने वाले कार्यक्रम से जोड़ा जाना चाहिए, जैसे– **'पेज मेकर'** आदि।
2. हाथ से तैयार की गई छवियाँ जो इलस्ट्रेटर, फोटोशॉप आदि के माध्यम से तैयार की गई हों, को एक **'दस्तावेज'** (File) के रूप में संरक्षित कर लिया जाना चाहिए।
3. रंगों में निर्गम (Out Put) देना है तो उन्हें सभी फाइलों को जोड़ने से पूर्व उपर्युक्त बताये गये चारों रंगों में होना चाहिए।
4. सभी मूल ई.पी.एस., स्कैनिंग और संदेश लिखित ग्राफिक्स को एक स्थान में एकत्रित होना चाहिए।
5. सभी दस्तावेजों (फाइलों) को जोड़ना चाहिए।
6. सभी फाइलें एक ही फोल्डर में स्थित होनी चाहिए।

OOO

12 दृश्य कलाओं की निर्मिति में सहायक परम्परागत और आधुनिक माध्यम तथा सामग्री (Traditional and Modern Mediums and Material in making Visual Arts)

चित्रकला (Painting)

चित्र बनाने के लिए आदिकाल से लेकर आज तक के मानव ने विभिन्न प्रकार के चित्र–तल व सामग्रियों का उपयोग किया है। आदिमकाल में गुफाओं की **'खुरदरी दीवारें'** ही उसके चित्रण का आधार रहीं जिन पर नुकीले पत्थरों, पेड़ की टहनियों से रेखायें खींची गईं। फलों के छिलकों को सुखाकर या जलाकर बनाये गये रंग ही उसकी चित्रण सामग्री थी।

अजन्ता, एलोरा व बाघ आदि गुफाओं की विशाल भित्तियों पर उसने भित्ति के निर्माण से लेकर भित्ति चित्रण की सामग्री को अपने हाथों से तैयार किया। आरम्भ से ही भित्ति चित्रण या फ्रेस्को पेन्टिंग की दो पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं– **'आला गीला पद्धति'** तथा **'सूखी पद्धति'**। भित्ति निर्माण की तैयारी में प्रयुक्त सामग्री– चूना (प्राकृतिक चूना), रेत अथवा संगमरमर का चूर्ण जिससे दीवार पर प्लास्टर किया जाता है। रेखांकन हेतु गेरू पाऊडर। यूरोप के कलाकारों ने रंगों को स्थायित्व देने हेतु गोंद, सरेस, अंडे की जर्दी या सफेदी, अलसी का तेल एवं मोम आदि का प्रयोग भी किया। भित्ति–चित्रण में प्रयुक्त रंग– रामरज, काजल, लाजवर्द, टेरावर्ट, सफेद खड़िया, गेरू, हिरमिच आदि हैं।

आगे चलकर मध्यकाल में पाल तथा जैन शैली के **'पोथी–चित्रण' ताल पत्रों व भोजपत्र** पर **'लोहे की नुकीली शलाका'** के माध्यम से किया गया। जिस पर काली व रंगीन स्याही से लेखन व चित्रण कार्य किया गया। कागज के आविष्कार के पश्चात् ताल–पत्रों व भोजपत्रों के स्थान पर कागज की पोथियों पर रंगीन स्याही, काली स्याही व खनिज रंगों का प्रयोग किया गया व लोहे की शलाका के स्थान पर बालों की ब्रश का प्रयोग किया गया। मध्यकाल में जैन **'पट–चित्रण'** भी विशेष रूप से किया गया। राजस्थानी, मुगल व पहाड़ी शैली का चित्रण **'कागज की वसलियों'** पर किया गया, जिस पर खनिज रंगों का प्रयोग **'गिलहरी के पूँछ'** के बालों से बनाई गई बारीक ब्रश से किया गया।

आधुनिक कलाकार ने कागज, कपड़ा, कैनवास, हार्डबोर्ड, प्लाईबोर्ड आदि को

चित्रतल के रूप में उपयोग करना प्रारम्भ किया है। साथ ही आज कई कम्पनियों ने अन्य सहायक सामग्री के उत्पादन करने भी आरम्भ किये हैं। कलाकारों ने अब **'काँच'**, **'फाइबर ग्लास'**, **'सिरेमिक्स'** आदि को भी चित्र–तल के रूप में अपनाया है।

कागज अथवा ड्राइंग शीट–

'कागज' आजकल चित्र बनाने की सर्वाधिक प्रचलित आधार–सामग्री है। आज बाज़ार में भिन्न–भिन्न प्रकार के कागज मिल रहे हैं; जैसे–हैंडमेड पेपर (पूना, साँगानेरी, पाँडिचेरी, बैंगलोरी आदि), कार्ड शीट, कॉडराइज शीट, ऑयल शीट, वॉट–मैन पेपर, पेस्टल पेपर, टेम्परा पेपर, आईवरी या प्लास्टिक शीट, ऐक्रेलिक शीट, पोस्टर पेपर इत्यादि।

पेपर या शीट पर पेन्सिल, चारकोल, काउण्टी, क्रेयोन पेस्टल रंग (ऑयल अथवा ड्राई), मोम के रंग एवं रंगीन पेन्सिलों की सहायता से चित्रण किया जाता है। पेन्सिल, चारकोल, पेस्टल आदि को स्थायित्व प्रदान करने के लिए **'फिक्सेटिव'** को स्प्रे अथवा ब्रश की सहायता से लगाया जाता है। कागज व रंगों के साथ–साथ ड्राइंग बोर्ड, स्केल, रबड़, ईजल, लैण्डस्केप बोर्ड, शार्पनर या कटर तथा ड्राइंग पिन आदि भी चित्रण के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री में सम्मिलित हैं।

जलरंग (Water-Colour)

पानी में घुलनशील रंगों को जलरंग कहा जाता है। ये रंग आज बाजार में ट्यूब तथा केक के रूप में उपलब्ध हैं। इन रंगों को तूलिका (ब्रश) की सहायता से कागज पर लगाया जाता है। ये ब्रश **'सेबल'** के नर्म बालों से बनाये जाते हैं। आजकल सिंथेटिक बालों के ब्रुश भी बाजार में उपलब्ध हैं।

टेम्परा या गोशे (Tempara or Gouache)

भारत में इन रंगों को **'पोस्टर कलर'** (Poster Colour) भी कहा जाता है। इन्हें भी जल के मिश्रण से कागज पर लगाया जाता है। ये रंग अपारदर्शी होते हैं तथा भारतीय लघु चित्रों में ऐसे ही अपारदर्शी रंगों का इस्तेमाल किया गया है। आजकल ये रंग बाजार में छोटी बड़ी शीशियों में उपलब्ध हैं।

कैनवास चित्रण–

कैनवास तैलरंगों का आधार होता है। चित्रण से पहले कैनवास क्लॉथ को लकड़ी के चौखट (Streature) पर चारों ओर से कसकर बाँध दिया जाता है तथा सरेस अथवा फेविकोल आदि का घोल लगाकर तैयार किया जाता है। आजकल बाजार में तैयार कैनवास भी उपलब्ध है।

तैलरंग (Oil Colour)

तैलरंगों से कपड़ा, कैनवास, काष्ठ एवं भित्ति आदि पर चित्रण किया जाता है। तैलरंग जलरंग की तुलना में अधिक स्थाई होते हैं। यह माध्यम जल्दी सूखने वाला नहीं होने के कारण इसमें पर्याप्त फेरबदल की गुंजाइश होती है। इन रंगों में **'पारदर्शिता'** व **'अपारदर्शिता'** दोनों ही गुण विद्यमान होते हैं। कलाकार तैल रंगों में टेक्सचर आदि के प्रयोग व **'इम्पेस्टो'** (रंगों की मोटी परत) लगाने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होते हैं। ट्यूब के रूप में बाजार में उपलब्ध तैलरंगों से चित्रण करने के लिए आवश्यक सामग्री है– कलर पैलेट, अलसी का तेल (Linseed Oil), तारपीन तैल (Turpentine Oil), वॉरनिश (Varnish)(चमक लाने व शीघ्र सुखाने में सहायक), हॉग या सेबल हेयर ब्रश पैलेट नाइफ, पेन्टिंग नाइफ, कैनवास या ऑयल–शीट पर ड्राइंग बनाने हेतु चारकोल आदि की आवश्यकता होती है।

एक्रेलिक रंग (Acrylic Colour)

ये रंग भी तैलरंग व जलरंग की ही भाँति कैनवास व कागज पर समान रूप से भरे जा सकते हैं। आधुनिक कलाकारों में यह माध्यम बहुत लोकप्रिय होता जा रहा है। इसका प्रधान लक्षण है **'शीघ्र सूख जाना'**। साथ ही रंगों की पारदर्शिता व अपारदर्शिता का प्रभाव भी इनमें प्राप्त किया जा सकता है। इन रंगों को पानी के साथ व **'एक्रेलिक मीडियम'** के साथ भी प्रयुक्त किया जा सकता है। ये रंग ट्यूब के रूप में बाजार में उपलब्ध हैं। इस माध्यम में प्रयोग करते समय **'जलरंग'** व **'तैल–रंग'** दोनों की विशेषताओं को समाहित किया जा सकता है।

परम्परागत लघु–चित्रण

परम्परागत रूप से लघु–चित्रण **'मिनियेचर कला शैली'** को कहते हैं। इसके अन्तर्गत प्रयोग में ली जाने वाली सामग्री निम्न प्रकार से है–

वसली– एक से अधिक पतले कागजों को चिपकाकर बनाये गये कागज की वसली का चित्रण आधार।

आटे की लेई– कागज को चिपकाने के लिए।

सफेद खड़िया– कागज पर अस्तर लगाने के लिए।

घोटी या हकिक पत्थर– कागज की घुटाई के लिए।

खनिज रंग– गेरू, हराभाटा, रामरज, हिरौंजी, लाजवर्द व सोने व चाँदी के रंग।

वानस्पतिक रंग– हल्दी, नील, लाख, केसूली के फूल।

रासायनिक रंग– सिंदूर, सफेदा, स्याही, जंगाल आदि से तैयार किये गये रंग।

आजकल बाज़ार में विभिन्न कम्पनियों द्वारा बनाये गये **'पोस्टर कलर'** उपलब्ध हैं जिनसे लघु–चित्रण किया जा रहा है।

छापा–चित्रण (Print-making)

आदिकाल में मानव अपने **'हाथ के छापे'** दीवारों पर लगाता था। आज भी लोक कलाओं में हाथ के छापे दीवारों या अन्य धरातलों पर लगाये जाते हैं। परन्तु 1450 ई. में **'गुटनबर्ग'** द्वारा छापा–मशीन के आविष्कार के पश्चात् छापा–चित्रण करना बहुत सरल हो गया और यह माध्यम आज अत्यन्त लोकप्रिय हो चुका है। कॉलेज व विश्वविद्यालयों में चित्रकला की शिक्षा के अन्तर्गत यह एक आवश्यक विषय के रूप में अपना लिया गया है। इसके अन्तर्गत कलात्मक रूपाकारों को प्रिन्टिंग धरातल पर तैयार कर स्याही से कागज पर छपाई की जाती है।

प्रिन्टिंग धरातल– जिंक प्लेट, चूने का पत्थर, लकड़ी, लिनो–शीट, मेटल शीट, सिल्क स्क्रीन, कपड़ा आदि।

वुड कट या लिनो के धरातल को तैयार करने के लिए टूल (Tool) :

प्रिन्टिंग स्याही लगाने के लिए– रोलर,

छापा–चित्रण के लिए – कागज।

मेटल की प्लेट में बनाये गये डिजाइन को काटने के लिए – अम्ल (Acid)।

प्लेट की तैयारी के लिए स्थूल सामग्री (Material) : फ्रेन्च चॉक (French Chalk), विम (Vim), रॉकर (Rocker), एमरी पेपर (Emery Paper), मेटल पॉलिश (Matel Polish), बर्निशर (Burnisher), डस्ट बॉक्स (Dust Box), वायर–वूल (Wire-wool), एनग्रेवर (Engraver), नीडिल (Needle), बरिन्स (Burins), रॉकर (Roeker) आदि।

अन्य सहायक सामग्री में : विभिन्न आकारों के रबड़, पोलीयुरेथिन रोलर, विभिन्न रंगीन स्याही के डब्बे, तारपीन तेल, स्प्रिट, हॉट–प्लेट, ऐसिड–ट्रे, थिनर, रेजिन–डस्ट, केरोसीन ऑयल, मोमबत्ती, न्यूज पेपर, नमदे (चौकोर व लम्बे), बैठकर काम करने के लिए टेबिल–कुर्सी आदि हैं।

लिथोग्राफ प्रिन्टिंग (Lithographic Printing)

इस तकनीक में **'चूने के पत्थर'** पर ड्राइंग बनाकर उससे प्रिन्ट लिया जाता है।

सामग्री– चूने का पत्थर।

- **पत्थर को तैयार (Grainding) करने के लिए :** रेत या कार्बोरेण्डम कण, प्यूमिक स्टोन, किकर की गोंद, कपड़ा या स्पन्ज।
- **ड्राइंग करने के लिए :** तुश लिथोड्राइंग इंक, ग्लास मार्किंग पेन्सिल अथवा लिथो–क्रेयन।
- **पत्थर पर स्याही लगाने के लिए :** रोलर।
- **प्रिंट या छापा लेने हेतु :** कागज, नमदे इत्यादि।

सिल्क स्क्रीन (Silk Screen)

इस तकनीक का इस्तेमाल बहुरंगीय, बारीक छपाई हेतु किया जाता है।

सामग्री–

- स्क्रीन फ्रेम, नायलन् का कपड़ा (Mesh Screen) – फ्रेम पर चढ़ाने के लिए।
- डार्करूम – जहाँ इस स्क्रीन लगे फ्रेम पर पी.वी.ए. के घोल में बायक्रोमेट कणों को निश्चित अनुपात में मिलाकर फिल्म चढ़ाई जा सके।
- स्केल या स्टील पट्टिका (जो फिल्म चढ़ाने में सहायक होती है।)।
- कोडाक पेपर या कोई भी पारदर्शी पेपर।
- अपारदर्शी काली वाटरप्रूफ स्याही।
- एक्सपोजर बॉक्स या सूर्य के प्रकाश को काँच से परावर्तित करने के लिए फ्रेम लगा काँच (जिससे डिजाइन को एक्सपोज किया जा सके)।
- प्रिन्टिंग टेबल।
- स्क्रीन प्रिन्टिंग इंक।
- स्क्वीजी (जिसकी सहायता से इंक लगाई जाती है)।

मूर्तिकला :

मिट्टी, पत्थर, प्लास्टर, लकड़ी, मोम, हाथी दाँत एवं धातु (लोहा, पीतल, ताँबा, एल्युमीनियम, जस्ता, काँसा आदि) को काटकर, गढ़कर, खोदकर, उभारकर अथवा ढालकर बनाई गई आकृति को मूर्ति कहते हैं जिसे चारों ओर से घूमकर देखा जा सके। मूर्तिकला में **'त्रि–आयामी'** गुण रहता है अर्थात् उसमें लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई या मोटाई ही उसके तीन आयाम (Three Dimension) होते हैं। मूर्ति मुख्यतया दो प्रकार की होती हैं–

(1) **उभरी हुई आकृति वाली मूर्ति** (Relief Sculpture)। इसके भी दो भाग होते हैं– 'हाई रिलीफ' (High Relief), 'लो रिलीफ' (Low Relief)।

(2) **गोलाईयुक्त त्रि–आयामी मूर्ति** (Round Sculpture)

मिट्टी की मूर्ति–

मिट्टी से मूर्तियाँ, खिलौने तथा बर्तन आदि का निर्माण किया जाता है।

स्थूल सामग्री– मिट्टी– यह दो प्रकार से व्यवहार में लाई जाती है–

1. क्ले– मॉडलिंग के लिए चिकनी व मुलायम मिट्टी। मॉडलिंग क्ले तीन प्रकार की होती है– 1. प्राकृतिक मिट्टी (क्ले), 2. गहरी लाल मिट्टी, 3. टेक्सचर वाली मिट्टी जिसमें प्लास्टिसिटी अधिक होती है।

2. टेराकोटा– कम चिकनी या रेत मिली मिट्टी जिसे पकाया जाता है।

रिलीफ काम करने के लिए उतने ही साइज की मिट्टी की प्लेट या स्लेब (Flat) तथा बड़ी गोल खड़ी या बैठी मूर्तियों के लिए ढाँचा (आरमेचर) जो मिट्टी के अन्दर या बीच में ठोस मजबूत लोहे की छड़, लकड़ी अथवा बाँस या फूस आदि का बनाया जाता है जो मिट्टी को पकड़े रहता है।

मिट्टी से मूर्ति बनाने के लिए विभिन्न औज़ार–

क्ले मॉडलिंग के औज़ार–

- लकड़ी का बेलन (Wooden Rolling Pin) – मिट्टी को बेलने के लिए।
- लकड़ी की बड़ी गोल चम्मचें (Wooden Spoons)।
- पानी छिड़कने की बोतल (जो मिट्टी में नमी बनाये रखने में सहायक हो सके) (Spray Bottle or Vital for maintaining the moisture of the clay)।

टेराकोटा– पकाई गई मिट्टी की मूर्तियाँ।

सामग्री–

- **रेत–** 25%, रंग।
- **आरमेचर–** जिस पर मिट्टी चढ़ाई जाती है।
- **न्यूजपेपर–** जिससे क्ले का वजन कम हो जाता है।
- **सख्त किस्म का चाकू–** जिससे काटकर आरमेचर (ढाँचा) से मिट्टी काटकर हटाई जाती है।
- **वायर–लूप टूल–** मिट्टी को हटाने का एक औज़ार।
- **अलग–अलग दो भाग** – क्ले को दोनों भागों पर बराबर–बराबर लगाने के लिए दो हिस्से।
- **नाइफ–** दोनों भागों के जोड़ों पर क्ले लगाने के लिए जिससे दोनों हिस्सों को जोड़ने पर ज्यादा लगी मिट्टी हटा दी जाती है।
- **भट्टी–** जोड़ने के बाद इसे फायर करने के लिए।

पॉटरी और सिरेमिक– पॉटरी और सिरेमिक की क्ले बहुत तरह की मिट्टी का मेल होती है। जिस प्रकार की पॉटरी तैयार करनी होती है वैसी ही प्रकार की क्ले प्रयोग में लाई जाती है। इस मिट्टी में टेक्सचर, रंग प्लास्टिसिटी और ठहराव होना चाहिए जो पकाने से पहले और बाद में भी आवश्यक होता है। **प्रमुख क्ले–** जो बाजार में उपलब्ध होती हैं– **स्टोन वेयर, पोर्सिलेन, बोन–चाइना, सफेद व लाल प्राकृतिक मिट्टी (अर्दनवेयर)।**

टूल्स (Tools)–

सिरेमिक टूल्स–

1. रोलिंग पिन (Rolling Pin)
2. हेसियन (Hessian)
3. टर्निंग टूल्स (Turning Tools)
4. स्पंज (Sponge)
5. रबड़ किडनी (Rubber Kidney)
6. कटिंग वायर (Cutting Wire)
7. नाइफ (चाकू) (Knife)
8. प्लास्टिक का कंघा (Plastic Comb)
9. ब्रश (Brush)
10. लकड़ी का चम्मच (Wooden Spatula)
11. विभिन्न प्रकार के वायर–लूप बने टूल्स।
12. पकाने के लिए भट्टी जो देशी प्रकार की व इलेक्ट्रिक भी हो सकती है।
13. पॉटरी को शेप देने के लिए Wheel का प्रयोग किया जाता है।
14. पॉटरी के लिए मोल्ड्स का भी प्रयोग किया जाता है।
15. चमक लाने के लिए ग्लेजिंग की जाती है।
16. रंग– डिजाइन में भरने के लिए।
17. पकाने के लिए इलेक्ट्रिक फर्नेस अथवा देशी तरीके से बनाई गई भट्टी।

मोम से मॉडलिंग–

विभिन्न प्रकार की मॉडलिंग हेतु बाजार में भी विभिन्न प्रकार के मोम उपलब्ध हैं जिन्हें 'तेल इन्डस्ट्री' में तैयार किया जाता है जो **सख्त, नरम व मुलायम** आदि होते हैं।

वैक्स मॉडलिंग के टूल्स–

- वैक्स के काम को करने के लिए धरातल – जो काँच या संगमरमर का हो सकता है।
- एक छोटा वैक्स स्क्रेपर जो आगे से तिकोना जैसा होता है।
- एक बड़ा वैक्स स्क्रेपर साइज के अनुसार प्रयोग के लिए।

- कीलें – विभिन्न साइज की।
- एक नाइफ या कटर।
- पेन्सिलें।
- विभिन्न प्रकार के नोंकदार औज़ार (दंत चिकित्सा में काम में आने वाले औज़ार)
- पैने औज़ार बारीकी निकालने के प्रयोग में आते हैं।
- सॉफ्ट वैक्स की मॉडलिंग में हाथ भी मुख्यतया टूल का ही काम करते हैं।
- स्टील, वुडन व धातु की चम्मचें।
- एक स्प्रिट लैंप अथवा मोमबत्ती जिससे कटर, ब्लेड अथवा स्पेचुला को गर्म किया जा सके।
- कॉपर वॉयर – आर्मेचर बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है।
- वैक्स के किनारों को वैल्ड (जोड़ने) के लिए कम ताप की आग।
- एक सॉसपेन – जिसमें वैक्स को पिघलाया जा सके।
- कप या कुप्पी – पिघलाये हुए धातु को मोल्ड में डालने के लिए।

मोम को पिघलाकर धातु की ढलाई कर बनाई जाने वाली मूर्तियाँ–

प्रमुख धातुएँ– अल्युमिनियम (Aluminium), सीसा (Lead), लोहा (Iron), काँसा (Bronze), ताँबा (Copper), सोना (Gold) व चाँदी (Silver), पीतल (Brass)।

अल्युमिनियम– स्वभावतः सख्त परन्तु हल्के वज़न का, साथ ही सस्ता माध्यम होता है। इस पर **'सिल्वर'** पॉलिश की जाती है जिससे इस धातु में चमक आ जाती है। इसे पिघलाने के लिए कम ताप की आवश्यकता होती है।

सीसा (Lead)– छोटे स्तर पर उत्पादों को बनाने में सीसा एक उपयुक्त सामग्री के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है जिसे अनेक शताब्दियों से प्रयोग में लाया जा रहा है; जैसे– बगीचे में लगाई जाने वाली मूर्तियाँ, फव्वारे और अन्य भवन सम्बन्धी बारीकियों में। यह भी कम ताप पर पिघलने वाला माध्यम है तथा बहुत **'मुलायम धातु'** है अतः छोटी ढलाई वाली मूर्तियों में प्रयोग में लाया जाता है।

लोहा (Iron)– लोहा एक अत्यन्त **'सख्त'** धातु होता है। सदियों से लोहे का प्रयोग इमारतों के निर्माण में होता आया है। साथ ही फव्वारे, लैंप पोस्ट, बिजली के तारों व साधारण तारों, औज़ारों के निर्माण तथा इन्डस्ट्री निर्माण के औज़ारों के लिए प्रयोग में लाया जाता है। आजकल के मूर्तिकार इस धातु का प्रयोग मूर्ति निर्माण के लिए बहुत ही कम कर रहे हैं।

काँसा (Bronze)– काँसा मूर्ति की 'ढलाई' के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम है। अतएव मूर्तिकारों के मध्य यह सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है। 90 प्रतिशत ताँबा, 7 प्रतिशत टिन और 3 प्रतिशत जस्ता मिलाकर काँसे का निर्माण किया जाता है। कभी–कभी इसमें से टिन का प्रतिशत छोड़ दिया जाता है। काँसा, ताँबे व पीतल की अपेक्षा अधिक मजबूत व टिकाऊ धातु है। इस धातु का अपना एक प्राकृतिक रंग भी होता है और कलाकार इसमें इच्छानुसार रंग लाने के लिए अनेक रासायनिक प्रयोग भी करते हैं। **इस धातु में मूर्ति निर्माण के लिए मोम पिघलाकर ढलाई के द्वारा मूर्ति निर्माण प्रक्रिया को अपनाया जाता है।**

सोना व चाँदी– सोना व चाँदी मूर्ति निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त महँगी धातुएँ हैं। अतः गोल्ड तैयार करने के पश्चात् मोम को पिघलाकर धातु की ढलाई के माध्यम से ही तैयार किया जाता है। आजकल महँगी धातुओं के लिए **'वैक्यूम'** पर आधारित ढलाई (कास्टिंग) आदि तकनीकें भी प्रयोग में लाई जा रही हैं।

पीतल व ताँबा– इन्हें भी ढलाईयुक्त मूर्तियाँ बनाने के काम में लिया जाता है। आजकल बिजली के तार व बर्तन आदि बनाने में इनका अधिक प्रयोग हो रहा है।

मोम पिघलाकर काँसे की ढलाई– यह अत्यन्त दुरूह कार्य है। अतः इस कार्य के लिए विशेष प्रकार के औजारों व साधनों की आवश्यकता होती है; जैसे–

- मोम का मॉडल।
- रॉड्स जो मोम से बनाई जाती है। धातु की रॉड्स (रनर जिसमें से धातु पिघलाकर ढाला जाता है) ये मॉडल के चारों ओर बनाई जाती हैं।
- मॉडल के छोटे भागों में जाने वाली आड़ी रॉड्स जो मॉडल के सिर से लेकर पैर तक जाने वाली खड़ी रॉड से जुड़ी रहती हैं।
- एक रनर कप, जो खड़ी रॉड के ऊपर के भाग के मुँह पर बनाया जाता है जिसमें पिघलाया हुआ धातु ढाला जाता है।
- हवा को बाहर निकालने के लिए राइजर।
- सीमेन्ट, रेत और प्लास्टर – मॉडल पर कोटिंग करने के लिए (इनकी कई परतें चढ़ाई जाती हैं)
- मोम को पिघलाने के लिए भट्टी।
- मोम के पिघलाने के बाद मॉडल को सावधानीपूर्वक बाहर निकालने के लिए लोहे की पकड़ व अन्य साधन।
- मॉडल टूटे नहीं इसके लिए उसे रेत में पूरा दबाया जाता है।
- लोहे की पकड़ को पकड़ने के लिए दस्ताने (फायर–प्रूफ), पैरों में मजबूत जूते

पहने होने चाहिए तथा चमड़े का एप्रीन, पैरों में मोटी पैंट, पूरी बाँह की जैकेट आदि पहनी जानी चाहिए।

- काला थर्मल कोटिंग पाउडर।
- कलाकार के साथ में काम करने वाला हेल्पर।
- मोल्ड को पूरी तरह से ठण्डा हो जाने के बाद हथौड़े की चोट देकर तोड़ा जाता है।
- मोल्ड के ऊपर लगाया गया सीमेन्ट, रॉड आदि सभी की सावधानीपूर्वक सफाई की जाती है।
- लोहे की छैनी (Chisel) – धातु की रॉड्स को हटाने के लिए।
- लोहे की आरी (Hacksaw) – धातु को काटने व सफाई करने के लिए।
- लोहे की रेती (File) – जिससे धातु के धरातल को बराबर किया जा सके।
- ड्रिलिंग मशीन (छोटी) – जिससे छिद्र खोलकर दुबारा भरे जा सकें।
- एक ब्रान्ज की रॉड – जिसे छिद्र के अन्दर डालकर छिद्र बन्द किया जाता है।
- फाइल अथवा रेती – जिसके द्वारा फिनिशिंग दी जाती है।

लकड़ी
(Wood)

'लकड़ी' बहुत ही सरलता से प्राप्त की जा सकने वाली वस्तु है। इसका प्रयोग घर बनाने में, ईंधन के रूप में, हथियार बनाने में, औज़ार आदि बनाने में किया जाता है।

मूर्तिकला में पत्थर और लकड़ी दोनों ही माध्यम परम्परागत रूप में प्रयोग में लाये जा रहे हैं। पत्थर की अपेक्षा मुलायम होने के कारण लकड़ी की खुदाई सरल होती है परन्तु यह माध्यम पत्थर के जितना टिकने वाला नहीं होता है। यही कारण है कि प्राचीन सभ्यताओं के बहुत ही कम उदाहरण आज हमें प्राप्य हैं। जिन स्थानों की जलवायु शुष्क होती है वहीं पर लकड़ी को सुरक्षित रखा जा सकता है। मिस्र के पिरामिड़ों से कुछ छोटे आकार की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो संभवतया दफनाये गये व्यक्ति के दासों की रही होंगी।

आज लकड़ी का प्रयोग घरों में **'फर्नीचर'**, **'दरवाजे'**, **'चौखट'**, **'आलमारी'** आदि बनाने में भी बहुतायत से किया जा रहा है।

लकड़ी के प्रकार–

केदार (Cedar)– यह बहुत बारीक और नज़दीकी रेशे वाली सख्त और हल्की लकड़ी होती है जिस पर सरलता से काम किया जा सकता है। यह बाहरी जगहों (out-door) में काम करने के लिए अच्छी लकड़ी है।

पाइन (Pine wood)– यह मुलायम रेशे वाली लकड़ी होती है जिसका प्रयोग आज मकान बनाने में अधिक किया जा रहा है। यह मूर्ति की खुदाई के लिए अधिक उपयुक्त नहीं होती है क्योंकि यह सरलता से चिर जाती है।

फलों के वृक्षों से प्राप्त होने वाली लकड़ी–

एप्पिल वुड– यह नजदीकी रेशे वाली सख्त लकड़ी होती है। ताज़ा लकड़ी सफेद रंग की होती है परन्तु वह सूखने पर लाल रंग की हो जाती है। लकड़ी की खुदाई के लिए उपयुक्त होती है।

चैरी वुड– यह एक परम्परागत रूप से खुदाई के लिए उपयोग में लाई जाने वाली लकड़ी होती है जिसे अधिकांशतः **'रिलीफ–वर्क'** (Relief-Work) या उभारयुक्त खुदाई के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसका लाल मिश्रित भूरा रंग अत्यन्त मनमोहक होता है।

हौली (Holly)– यह एक समतल, सख्त व सफेद रंग की लकड़ी होती है जिसके बहुत ही बारीक रेशे होते हैं तथा यह खुदाई के लिए अत्यन्त उपयुक्त लकड़ी होती है। इसे काटे जाते समय एक विचित्र प्रकार की सुगन्ध आती है।

पियर–वुड (Pear Wood)– पियर वुड में हल्के लाल रंग से लेकर गहरे पीले रंग तक की विभिन्न रेंज आती हैं। यह लकड़ी समतल टेक्सचर युक्त, नजदीकी रेशेदार और सख्त किस्म की होती है।

प्लम–वुड (Plum-Wood)– यह बहुत सख्त किस्म की लकड़ी होती है जिसके रेशे भी बहुत भिन्न प्रकार के होते हैं। गुलाबी रंग से गहरे लाल रंग तक की विभिन्न रेंज इसमें प्राप्त हो जाती हैं। सख्त होते हुए भी इस पर काम सरलता से किया जा सकता है।

उपर्युक्त सभी फलों के वृक्षों की लकड़ी, लकड़ी की खुदाई के काम के लिए अत्यन्त उपयुक्त होती है परन्तु चूँकि इन फलों के वृक्षों का आकार अधिक बड़ा नहीं होता है, अतः इनसे प्राप्त होने वाली लकड़ी से ऐसे अधिक बड़े आकार का काम भी नहीं किया जा सकता है जिसे एक ही लकड़ी के पीस से बनाया जाना हो।

मुलायम लकड़ी–

एल्डर (Alder)– यह वृक्ष छोटे आकार का होता है। अतः इसकी लकड़ी हल्की व सरलता से खोदी जा सकने वाली होती है। इसका रंग लाल होता है और रेशे बहुत भिन्न

प्रकार के होते हैं। इसके रेशे का कम्पोजिशन इस प्रकार का नहीं होता कि उन्हें उसी के अनुसार चीरा जा सके। अतः इसका प्रयोग अधिकांशतया **'जूतों की ऐड़ी'** बनाने के काम में किया जाता है।

बिर्च (Birch)– यह एक सफेद रंग की व बहुत मुलायम रेशेदार लकड़ी होती है। इसका प्रयोग बाहरी हिस्सों (out door) में भी किया जाता है।

हैज़ेल (Hazel)– हैज़ेल एक छोटा वृक्ष होता है तथा इसकी लकड़ी जब यह हरा होता है तभी काट ली जाती है।

सख्त लकड़ियाँ (Hard Woods)–

ऐश (Ash)– यह एक सफेद किस्म की लकड़ी होती है जो सख्त और लचीली भी होती है तथा अपनी लम्बाई में से काटी जाती है। इसे गीली अवस्था में ही लम्बाई में से चीरना सरल होता है। यह घरों के **'बाहर के हिस्सों'** (out doors) के उपयोग के लिए बहुत उपयुक्त होती है, ऐसे हिस्से जिन पर वज़न भी डाला जा सके। इसका उपयोग धातु के औज़ारों के हैंडल बनाने में भी किया जाता है।

बीच़ (Beech)– यह लकड़ी मुलायम होती है तथा गीली रहते समय ही इसे चीरना आसान होता है क्योंकि सूखने पर यह बहुत ही सख्त हो जाती है। इसका रंग हल्का भूरा होता है। अधिकांशतः इसका प्रयोग लकड़ी का हथौड़ा बनाने में किया जाता है तथा यह बाहरी (out door) मूर्तियों के लिए अधिक उपयुक्त लकड़ी नहीं होती है।

बॉक्स–वुड (Box-Wood)– यह छोटे आकार के व नाज़ुक किस्म के काम के लिए बहुत ही उपयुक्त लकड़ी होती है जो सख्त व घनत्वदार भी होती है। इसमें भिन्न प्रकार के रेशे होते हैं। बॉक्स–वुड से लोहे की छैनी के हैंडल भी बनाये जाते हैं।

चैस्ट–नट (Chest-Nut)– यह बहुत समय तक चलने वाली लकड़ी होती है और गीली व सूखी दोनों ही अवस्थाओं में सरलता से चीरी जा सकती है। यह लकड़ी लम्बाई से सख्त होती है परन्तु यह बीच में से टूट भी सकती है। यह मध्यम भूरे रंग की लकड़ी होती है जिसमें भिन्न प्रकार के रेशे होते हैं जिन्हें अच्छी फिनिशिंग दी जा सकती है।

एबोनी (Ebony)–यह बहुत सख्त किस्म की, काले रंग व घनत्व वाली लकड़ी होती है। यह छोटे स्केल पर काम करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त लकड़ी होती है परन्तु यह शुरुआत करने वाले नव–मूर्तिकारों के लिए उत्तम माध्यम नहीं है।

एल्म (Elm)– यह एक गहरे लाल–भूरे रंग की लकड़ी होती है जिसमें अन्तर्बुनाई युक्त रेशे होते हैं। यह पानी को झेलने वाली लकड़ी होती है। यह बाहरी भागों (outdoor) के लिए बहुत उपयुक्त लकड़ी होती है जो गीलेपन को झेल सकती है। एल्म की लकड़ी

से बनाये गये **'पानी के निकास के पाइप'** (drainage pipe) आज भी काम करने वाली उपयुक्त स्थिति में देखे जा सकते हैं।

ग्रीनहर्ट (Greenheart)– यह लकड़ी बहुत भारी घनत्व वाली होती है जो पानी में भी तैर नहीं सकती है। इसे घरों को बनाने के काम में लाया जाता है। मूर्तिकार इस लकड़ी पर कठिनता से ही काम कर सकते हैं पर यह लकड़ी बहुत लम्बे समय तक चलने वाली होती है।

लाइम (बास वुड)[Lime (Bass Wood)]– यह लकड़ी खुदाई के काम के लिए बहुत ही उपयुक्त लकड़ी है। यह भली प्रकार से सूखती है तथा इसमें भिन्न प्रकार के रेशे होते हैं जो हल्का पीलापन लिए हुए होते हैं। यह **उभारयुक्त खुदाई** (Relief Carving) के लिए बहुत ही उपयुक्त लकड़ी होती है परन्तु यह बाहरी हिस्सों में प्रयोग के लिए अधिक उपयुक्त लकड़ी नहीं होती है।

महोगनी (Mahogany)– इस लकड़ी में बहुत कम मात्रा में नमी होती है और सूखने के बाद पतली पट्टियों के रूप में चीरी जाती है। यद्यपि यह खुदाई के काम के लिए भी उपयुक्त लकड़ी होती है यदि औज़ार बहुत तीखे व नुकीले हों। यह लकड़ी ललाई युक्त भूरे रंग की होती है।

मैपिल (Maple)– मैपिल की लकड़ी में बहुत ही बारीक व रेशे बहुत ही नज़दीक होते हैं तथापि टैक्सचर भिन्न–भिन्न प्रकार का होता है। इसका रंग हल्के से लाल–भूरा तक होता है जो अच्छी फिनिशिंग देने वाला होता है।

ओक (Oak)– ओक के मध्य भाग की लकड़ी विपरीत परिस्थितियों में भी बहुत मजबूत और अधिक समय तक चलने वाली लकड़ी होती है और सूखने पर और भी अधिक सख्त हो जाती है तथा लगातार समय के साथ–साथ और भी अधिक सख्त और मजबूत होती जाती है। जबकि इसकी नीचे की **'जड़ों की लकड़ी'** (Sap Wood) को खुदाई करने से पहले काटकर हटा दिया जाता है क्योंकि इसे कन्स्ट्रक्शन अथवा मकान बनाने के उपयोग में नहीं लाया जाता क्योंकि यह सैप लकड़ी अधिक मजबूत नहीं होती। सैप लकड़ी को अपने पीले रंग की परत के कारण हार्ट–वुड से अलग से पहचाना जा सकता है। हार्ट–वुड ही मकान के काम में प्रयोग में लाई जा सकती है साथ ही वह **'खुदाई'** (नक्काशी) के काम के लिए भी बहुत उपयुक्त होती है।

साइकेमोर [Sycamore (Plane)]– यह लकड़ी सफेद रंग की और अधिक सख्त होती है। इसे सरलता से पट्टियों के रूप में चीरा जा सकता है। इस पर काम करना कठिन होता है परन्तु यह बड़े–बड़े टुकड़ों में प्राप्य होती है।

वॉल नट (Wal nut)– वॉलनट अर्थात् अखरोट की लकड़ी खुदाई के लिए बहुत ही उपयुक्त होती है। यह गहरे भूरे रंग की होती है जिसमें धरातल बहुत अधिक रवादार होता है और ऊपर की पतली परत को हटा देने पर प्राप्त लकड़ी पर ही यह खुदाई का काम किया जाता है। अतः यह लकड़ी बहुत महँगी और कठिनाई से ही प्राप्त होती है। **काश्मीर में फर्नीचर अखरोट की लकड़ी पर की गई खुदाई से ही बनाया जाता है जो बहुत अधिक महँगा भी होता है।**

येवु (Yew)– यह लकड़ी बहुत सख्त और अधिक समय तक चलने वाली होती है। यह भिन्न प्रकार की रवादार लकड़ी होती है। इसके रंग बहुत भिन्न–भिन्न होते हैं जो हल्के पीले से लेकर गहरे लाल–भूरे तक पाये जाते हैं। खुदाई के अन्तर्गत इसमें अधिक फिनिशिंग आती है।

लकड़ी को काटने, खोदने अथवा नक्काशी के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले टूल्स एवं औज़ार– लकड़ी को काटने वाले औज़ार लकड़ी के रेशे, आकार, साइज़ और उसके वज़न के आधार पर प्रयोग में लाये जाते हैं; जैसे–

फन्नी (Wedge)– लकड़ी को लम्बाई में से चीरने वाला औज़ार जिसकी किनारी भी ढालयुक्त होती है जो अधिक धारदार नहीं होनी चाहिए। यह केवल लकड़ी को दो भागों में चीरता है काटता नहीं है। यह लकड़ी तथा धातु दोनों का ही बना होता है।

कुल्हाड़ी (Axe)– लकड़ी को काटने वाला औज़ार जिसमें आगे धारदार लोहे से बना सिर व पीछे हैन्डल लगा होता है। यह लकड़ी के रेशों के विपरीत भी लकड़ी को काट सकता है। कुल्हाड़ी विभिन्न आकार, वज़न और तरह–तरह के सिर वाली होती है।

वसूला या कुल्हाड़ी (Adze)– यह भी कुल्हाड़ी की भाँति का औज़ार होता है जो लकड़ी को विभिन्न स्तरों पर काट सकता है।

लोहे की छैनी (Chisel)– लकड़ी को विभिन्न आकार–प्रकार देने वाला औज़ार। बढ़ई के लिए यह औज़ार बहुत ही उपयोगी होता है जो लकड़ी को उसके रवाँ के साथ–साथ भी काट सकता है और उसकी विपरीत दिशा में भी काटता है। यह **'यू शेप'**, **'वी शेप'** आदि कई प्रकार की अलग–अलग होती हैं।

गोल रुखानी या छैनी (Gouge)– यह गोल छैनी वह सभी कार्य करने योग्य होती है जो समतल छैनी नहीं कर सकती।

रन्दा (Plane)– लकड़ी को छीलकर उसे समतल बनाने वाला औज़ार। बढ़ई का यह औज़ार मकान की चौखट आदि बनाने के बहुत काम आता है। पेन्टर कलाकारों के पेन्टिंग के फ्रेम और स्ट्रेचर बनाने आदि में भी यह बहुत प्रयोग आता है।

ड्रॉ–नाइफ (Draw-Knife)–यह एक लम्बा, तीखी धारदार ब्लेड वाला व हैंडल युक्त औज़ार होता है। मूर्तिकार अपने शरीर के वजन के आधार पर इसे आगे–पीछे कर सकता है। इसके द्वारा लकड़ी को आकार–प्रकार दिया जाता है। यह ताजा व गीली लकड़ी को काटने का उपयोगी औज़ार होता है।

स्पोकशेव (लकड़ी को गोलाई से छीलने वाला रन्दा)(Spokeshave)–ड्रा–नाइफ की ही भाँति छोटा औज़ार जो लकड़ी की सफाई और उसे समतल करने के काम आता है, साथ ही उसे आकार भी प्रदान करता है।

रेती (File)– धातु से बना एक समतल औज़ार जो धरातल को गोलाई देता है जिसके एक सिरे पर हैंडल लगा होता है। यह एक सिरे से समतल और दूसरे सिरे पर गोलाईयुक्त होता है तथा भारी होता है जो धरातल को समतल कर देता है।

रिफलर (Riffler)– यह फाइल की ही भाँति छोटा औज़ार होता है जिसे नाज़ुक और बहुत नक्क़ाशीदार आकारों के लिए प्रयोग में लाया जाता है। ये विभिन्न आकारों में उपलब्ध हो जाते हैं।

सेन्ड पेपर (Sand Paper)– ये बाजार में भिन्न–भिन्न **'ग्रेड'** के उपलब्ध हो जाते हैं जो बहुत **'फाइन'** से लेकर बहुत **'रफ ग्रेन'** वाले होते हैं। इनका उपयोग बहुत फाइन फिनिश प्राप्त करने में किया जाता है।

हैन्डिल (Handle)– धातु के औज़ारों के हैन्डिल लकड़ी से बनाये जाते हैं क्योंकि यह धातु की बजाए हल्की व पकड़ने में अधिक आरामदायक होती है।

आरी (Saw)– लकड़ी को रेशों के विपरीत आड़ा काटने का सबसे उपयुक्त औज़ार आरी होती है जिसमें एक फ्लैट स्टील की रॉड पर उसकी एक किनारी पर छोटे–छोटे तिकोने नुकीले व धारदार दाँत बने होते हैं। इसका हैंडल लकड़ी का बना होता है जिससे आसानी से पकड़कर काम किया जा सकता है।

ये आरी विभिन्न प्रकार की होती हैं–

लाँग सॉ (Long Saw)

बो–सॉ (Bow Saw)

क्रॉस–कट सॉ (Cross-cut Saw)

रिप–सॉ (Rip-Saw)

टेनोन–सॉ (Tenon-Saw)

फ्रेट–सॉ (Fret-Saw)

बैन्ड–सॉ (Band-Saw)

जिग–सॉ (Jig-Saw)

लकड़ी पर काम करने के उपकरण अथवा टूल्स– लकड़ी पर काम करने वाले लगभग हज़ारों प्रकार के उपकरण (Tools) होते हैं। उनसे काम करने के लिए उनके वज़न, साइज व आकार आदि को देखा जाता है। आजकल बिजली के उपकरण आ जाने से काम करना बहुत आसान हो गया है। ये उपकरण निम्न प्रकार हैं–

- ड्रिल मशीन (इलेक्ट्रिक) (Electric Drill)
- इलेक्ट्रिक जिग सॉ (Electric Jig Saw)
- सरफार्म (Surform)
- रेती (Files) अनेक प्रकार और साइज की
- रिफलर (रेती जैसा ही उपकरण) (Riffler)
- सॉकेट कसने वाले सैट (Socket Spanner sets)
- स्क्रू कसने वाला औज़ार (Screw Driver)
- पेंच खोलने वाला उपकरण (Wrenches)
- पेंच या बोल्ट कसने वाला उपकरण (Coach Bolts)
- दुहरे सिरे वाला कीला (Stud)
- कीलें या स्क्रू (Screws)
- कोच स्क्रू (Coatch Screw)
- तार जड़ी कीलें (Wirenails)
- साधारण कीलें (Oval nails)
- छोटे मुँह की पकड़ या संडासी (Pincers)
- साधारण हथौड़ा (Ordinary Hammer)
- बॉल हथौड़ा (Ball Hammer)
- प्लायर अथवा तार मोड़ने की मोटी डाँस की संडासी (Plier)
- कील निकालने वाला हथौड़ा (Claw Hammer)
- जोड़ने वाला लोशन (Adhesive)
- लकड़ी की फन्नियाँ जो लिंसीड ऑयल में भीगी हों (Linseed Oil)

- प्राकृतिक लकड़ी की फन्नियाँ (Natural Dowels)
- फन्नी बनाने का साँचा (Template for making Dowels)
- छेद करने वाला उपकरण (Auger)
- हैन्डिल फिट करने वाला उपकरण (Handle fitted)
- फरमा (Brace).

पत्थर
(Stone)

पत्थर में मूर्ति बनाने का इतिहास प्राचीन भवन निर्माण परम्पराओं से पूर्णतया जुड़ा हुआ है। इन प्राचीन परम्पराओं के माध्यम से हमें पत्थर के उपयोग की अनेक तक़नीकी बारीकियों का ज्ञान प्राप्त होता है। पत्थर अनेक प्रकार का होता है सख्त, मुलायम इत्यादि। आदिकाल में जिस प्रकार पत्थर का उपयोग किया गया है वह आज भी मूर्तिकारों को प्रभावित करता है। प्राचीन कालीन पत्थर की मूर्तियाँ **'तीन'** प्रकार की थीं– **रॉक–कट, मन्दिर या परिसरों में दीवारों पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ और एकल मूर्तियाँ।** साधारण रूप से पत्थर की मूर्तियाँ आज भी अपनी प्राचीन परम्परागत मूर्तिकला की ही याद दिलाती हैं।

साधारणतया तीन प्रकार के पत्थर होते हैं–

1. जिनमें अग्नि का अंश होता है (Igneous)
2. जो तलछट सम्बन्धित होते हैं (Sedimentary)
3. जो परिवर्तन या रूपान्तरण सम्बन्धित होते हैं (Metamorphic)

ये सभी विभिन्न भूगर्भीय प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप बनते हैं।

इग्नीअस रॉक्स–

ग्रेनाइट चट्टान– इस प्रकार की चट्टानों का सबसे उत्तम उदाहरण ग्रेनाइट पत्थर है। यह कई प्रकार व रंगों का होता है जो विभिन्न देशों में प्राप्त होता है; जैसे– स्केन्डेनेविया, दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील, अमेरिका और ब्रिटेन। ये सभी ग्रेनाइट बहुत सख्त होते हैं और उस पर फाइन पॉलिश होती है।

सैडिमेन्टरी रॉक्स– सैडिमेन्टरी रॉक्स के अन्तर्गत दो प्रकार की चट्टानें मुख्य होती हैं–

1. सैण्ड स्टोन– यह पत्थर लगभग सम्पूर्ण विश्व में पाया जाता है, जिसमें **'बालू**

या रेत' के कण होते हैं तथा जो एक प्रकार के **'कड़े पत्थर'** (अग्नि प्रस्तर) से मिलकर बनता है। इन दोनों के कण एक दूसरे को मजबूती देते हैं तथा यह पत्थर अत्यन्त **'रवादार'** होता है जिसे पॉलिश करने की आवश्यकता नहीं होती है। यह पत्थर अनेक खनिज रंगों (Earth Colours) जो लाल से लेकर मिट्टी के पीले रंगों (Ochre) तक पाया जाता है।

2. लाइम स्टोन– लाइम स्टोन चूने अथवा चॉक सम्बन्धित पदार्थ के जमने से बनता है। लाइम स्टोन अनेक प्रकार का होता है। इसमें **'समुद्री सीप'** और **'फॉसिल'** के कण भी होते हैं। लाइम स्टोन में पाये जाने वाले अनेक प्रकार पत्थर के मूर्तिशिल्पों के लिए उपयोगी होते हैं। मुलायम होने के कारण इन्हें आसानी से काटा जा सकता है। यह पत्थर क्रीमी सफेद से लेकर भूरे रंग तक प्राप्त होता है। इसका कारण पत्थर में लोहे के कणों की मौजूदगी अथवा गैरमौजूदगी होता है।

3. मैटामोर्फिक रॉक– मैटामोर्फिक चट्टानें दबाव, बहुत अधिक गर्मी और रासायनिक क्रिया के परिणामस्वरूप बनती हैं। इस प्रकार की चट्टानों में **'संगमरमर'** (Marble) और **'स्लेट'** (Slate) सर्वाधिक लोकप्रिय चट्टानें हैं।

संगमरमर (Marble)– वस्तुतः कैल्शियम कार्बोनेट से बनने वाला मार्बल बहुत बड़ी रेंज में प्राप्त होता है और विभिन्न रंगों में उपलब्ध होता है; जैसे– सफेद रंग का इटली से, काला मार्बल बेल्ज़ियम से, हरे रंग का पाकिस्तान से तथा भारत में भी अनेक स्थानों से संगमरमर उपलब्ध होता है जिसमें राजस्थान में **'मक़राना'** बहुत प्रसिद्ध स्थान है। **साधारणतया मूर्तिकार सबसे सादा किस्म के संगमरमर पर काम करना पसन्द करते हैं।**

स्लेट (Slate)– इस प्रकार की चट्टानें मिट्टी में दबाव बनने से बनती हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है इसमें विभिन्न तहों का होना जिससे इस चट्टान को एक ही दिशा में काटा जा सकता है। उन मूर्तिकारों के लिए यह बहुत उपयोगी होता है जो स्लैब फार्म में काम करना चाहते हैं। ये ग्रे–नीली अथवा हरे रंग की प्राप्त होती हैं। आजकल स्लेट को भवन निर्माण के काम में लिया जाने लगा है।

मुलायम पत्थर (Soft Stone)– जो मूर्तिकार नया–नया काम प्रारम्भ करना चाहते हैं उनके लिए मुलायम पत्थर ही उपयुक्त रहता है। यद्यपि इस पर काम करना कभी–कभी अधिक कठिन होता है। इस रेंज में जो पत्थर पाये जाते हैं वे हैं– **अलबस्टर, सोप–स्टोन, पोरफेरी और कुछ अधिक मुलायम लाइम–स्टोन; जैसे–** बॉथ स्टोन **आदि।**

पत्थर तराशने के औज़ार अथवा उपकरण (Stone Carving Tools)

मार्बल में छेद बनाने के विभिन्न पाइंट (Marble punches) :

- विभिन्न स्तरों पर मार्बल को समतल बनाने व अधिक बारीक काम की सफाई व घिसाई के बाडर पाइंट (Border Points)
- अधिक फाइन पाइंट (Finer Point)
- गोल मुँह की कीलनुमा छैनी (Round-ended chisels)
- सख्त पत्थर में चैनल बनाने के लिए बुल–नोज़ेज (Bullnoses) नामक उपकरण।
- फाइन पॉइंट वाला मैटल का उपकरण (Scriber) – जिसके द्वारा धरातल पर बहुत बारीक कुराई का काम किया जा सकता है।
- सख्त लकड़ी का गोल हत्थे वाला हथौड़ा – जो किसी भी अन्य हथौड़े जैसे उपकरण की भाँति प्रयोग में लाया जा सकता है।
- चौड़े मुँह वाली समतल छैनी (Forged Flat Chisel)।
- कम चौड़ी मुँह अथवा जीभ वाली समतल छैनी (Narrow tungsten Flat Chisel)।
- काँटी या कील निकालने का दाँत वाला उपकरण (Narrow spaced claw) – जिसमें दाँतों के बीच–बीच में कम जगह होती है।
- चौड़े मुँह वाली छैनी (The Broad boaster)
- अधिक चौड़े दाँत वाला कील निकालने का उपकरण (Wide spaced claw) – जो प्रारम्भ में एक साधारण रूपाकार निकालने में मदद करता है।
- कम चौड़ी जीभ वाला समतल उपकरण (Narrow Tungsten Tool)।

उपर्युक्त उपकरणों से पत्थर पर प्रारम्भिक कार्य किया जाता है।

पत्थर पर काम करने वाली 'रेती' अथवा **'फाइल' धातु के उपकरण होते हैं जिनके द्वारा पत्थर के धरातल को फिनिशिंग दी जाती है। पत्थर में पाये जाने वाले नुकीले उभार या दाँतों को फाइल या रेती की मदद से मुलायम बनाया जाता है।** जैसे :

- छोटी व नाजुक काम करने वाली रेती – जिसे **'रिफलर'** भी कहा जाता है (Very Small and delicate rasps, also known as rifflers)।
- धातु से बनी धारीदार **'ड्रेड–नॉट फाइल'** (Dreadnought File) – जिसके द्वारा आकृति को उभारने के लिए पत्थर को साफ किया जाता है।

- पत्थर पर काम करने की **'दानेदार'** रेती – जो धातु की धारीदार रेती को काम में लेने के बाद काम में लाई जाती है (a stone rasp)।

उपर्युक्त उपकरणों का प्रयोग पत्थर के धरातल को साफ करने और उन्हें अधिक बारीक काम करने योग्य बनाने के लिए किया जाता है।

पत्थर पर कुराई अथवा नक्काशी का काम करने के लिए विभिन्न प्रकार के हथौड़ों का प्रयोग किया जाता है जो अधिकांशतः अपने आकार–प्रकार, साइज और वजन में विभिन्नता रखते हैं। जैसे :

- छोटा डमी हथौड़ा (a small lead dummy hammer)
- कुछ बड़ा डमी हथौड़ा (a slightly larger dummy hammer)
- छोटा लम्प हथौड़ा (a small lump hammer).

  उपर्युक्त हथौड़ों की सहायता से अच्छे प्रभाव लाने के लिए किया जाता है।
- विभिन्न प्रकार की कीला–नुमा छैनियाँ (a range of fine claw chisels)
- विभिन्न प्रकार की समतल मुँह वाली छैनियाँ (Flat Chisels)
- भारी हथौड़ा (Heavy Hammer)
- खोदने का औज़ार (Pitching Tool)
- व्यास नापने का घुमावदार परकार (Curved Caliper)
- कम्पास (Compass)
- छोटे व लम्बे नुकीले पौइंट के कीले (Long Portland punches) ग्रेनाइट पत्थर को छेदने के लिए।
- लम्बे सिर वाला हथौड़ा (A long headed Hammer)
- बोल्ट (Lewis Bolts)
- घूमने वाला लकड़ी का स्टैण्ड (A revolving wooden bench or banker) जिससे ऊँचे धरातल पर पत्थर को रखकर काम किया जा सके।
- मोटा व गोलाई युक्त भारी हथौड़ा जिससे ग्रेनाइट पत्थर तोड़ा जा सके (A hammer which slightly curved top and angled down wards).

प्लास्टर (Plaster)

कैल्शियम सल्फेड को पानी में घोल $CaSO_4 2H_2O$ (जिप्सम) कर उसे 350° F (117° C) पर गर्म करने से 75 प्रतिशत अपना पानी छोड़कर $CaSO_4 \frac{1}{2} H_2O$ बनता है जो

'प्लास्टर ऑफ पेरिस' के नाम से जाना जाता है। जो कास्टिंग के लिए अत्यन्त उपयुक्त होता है और अधिकांशतः ही मूर्तिकारों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। यह सफेद पाउडर के रूप में आता है।

उपकरण या औज़ार (Tools)

प्लास्टर के साथ काम करने वाले बहुत अधिक उपकरण उपलब्ध हैं जो अधिक महँगे नहीं होते हैं परन्तु उनकी साफ–सफाई का बहुत अधिक ध्यान रखा जाता है तभी अच्छे नतीजे प्राप्त होते हैं। जैसे :

- प्लास्टर चिकनाने का औज़ार (A Float)
- नुकीली करनी (Pointing trowel)
- काटने के लिए चाकू (Parting knife)
- विभिन्न आकार–प्रकार के मॉडलिंग–उपकरण (Modelling tools)
- स्क्रेपर – खुरचने का औजार (Scraper)
- स्पेचुला (Spatula) प्लास्टर को धरातल पर फैलाने का उपकरण
- वॉयर–ब्रश (Wire-Brush)
- प्लास्टर लगाने की मोटी रेती (Plastic rasps)
- विभिन्न प्रकार की चौड़ाई वाले बड़े खुरचने के औज़ार (assorted larger scrapers)
- समतल छैनी (Flat Chisels)
- दाँतों वाली छैनी (Claw Chisels)
- हथौड़ी (Hammer)
- डमी (Dummy) – गोल सिर वाला हथौड़ा जो कि अधिकांशतः लोहे का बना होता है।
- चाकू (Knife)
- सरफार्म (Surforms)
- प्लास्टर लगाने की मोटी रेती (Plaster rasps)
- स्क्रेपर – जिसे धातु काटने की आरी की ब्लेड से बनाया जाता है (Scraper made from a broken hacksaw blade)

- वायर–ब्रश (Wire-Brush)
- आरी– जिस पर एडजस्ट करने वाला ब्लेड लगा हो (a general purpose saw with an adjustable blade)

उपर्युक्त उपकरणों के साथ–साथ कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण सामग्री जैसे–

- नक्काशी या बारीक काम करने वाली रेती (Rifflers)।
- लकड़ी की फन्नी (Wooden Wedges)।
- एक पुराना चीज़ ग्रेटर (Cheese Grater) जिससे खुरदरा काम किया जा सके।
- लकड़ी का हथौड़ा (a mallet)।
- प्लायर (Pliers)।
- कैंची की एक जोड़ी (A pair of Scissors)।
- प्लास्टिक बाउल (Plastic Bowls)– जो कि प्लास्टर को घोलने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त साधन है।

इन प्लास्टिक बाउल को साफ करने के लिए धातु के उपकरण कभी भी प्रयोग में नहीं लाए जाने चाहिए क्योंकि उनसे रगड़ के निशान बनने का खतरा रहता है और बाउल कभी भी सम्पूर्णतया साफ़ नहीं होता।

कंकरीट (Concrete)

कंकरीट मूर्ति निर्माण का अपेक्षाकृत नया माध्यम है। यद्यपि इसका प्रयोग भवन निर्माण में काफी समय से किया जा रहा है। इसका प्रयोग कम इसलिए भी होता है क्योंकि यह पत्थर का बहुत निम्न स्तर का प्रतिनिधि माना जाता है लेकिन पत्थर की कमी वाले स्थानों में इस माध्यम ने भी महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। आज यह माध्यम भवन निर्माण में बहुतायत से उपयोग में लाया जा रहा है और मूर्तिकला के क्षेत्र में भी इसका प्रयोग बढ़ता जा रहा है। कंकरीट को सीमेन्ट और पानी के साथ मिलाकर प्रयोग में लाया जाता है। इसके द्वारा मोल्ड से **'ठोस कास्टिंग'** भी की जाती है तथा **'होलो–कास्टिंग'** भी की जा सकती है। साथ ही कंकरीट से सीधे ही **'मोल्डिंग'** भी की जा सकती है।

उपकरण तथा औजार–

कंकरीट–सीमेन्ट के काम के लिए उपयोग में आने वाले उपकरण व औज़ार अधिकांशतः हमारे घरों में उपयोग में आने वाले औज़ारों व उपकरणों की भाँति ही होते हैं। जो निम्न प्रकार से हैं–

- एक प्लास्टिक की बाल्टी (A bucket)

- लकड़ी का फावड़ा या हथौड़ा (A Wooden Mallet)
- टाट अथवा सन का बना बोरा (Sacking or Hessian) जिसे कंकरीट व सीमेन्ट आदि को मिलाने के काम में लाया जा सके।
- विभिन्न प्रकार की छोटी–बड़ी करनी या खुर्पियाँ (A selection of Trowels)
- एक फावड़ा (कंकरीट को उठाने व मिलाने के लिए) (A Spade)
- रगड़ने के लिए एक ब्रश (A scrubbing brush)
- पत्थर पर काम करने वाली छैनियाँ (Stone Chisels)
- बुलबुलों को हटाने के लिए पेन्ट ब्रश (A Paint Brush)
- अच्छी फिनिशिंग लाने के लिए रेती (A File)
- कंकरीट को बराबर करने के लिए फ्लोट (A Flot)
- खुरचने के लिए स्क्रेपर (Scrapers)
- कार्बोरण्डम डिस्क्स (Carborundum Discs)
- बिजली की ड्रिल मशीन (An Electric Drill)
- ड्रिल मशीन के साथ प्रयोग में लाया जाने वाला छोटा लोहे का टुकड़ा (A Masonry Bit)

कंकरीट–सीमेन्ट के साथ काम करने के लिए सभी उपकरण तथा काम करने का स्थान साफ–सुथरा होना चाहिए।

रेज़िन और ग्लास फाइबर (अधिक मजबूत प्लास्टिक) [Resins and Glass Fibre (Reinforced Plastics)]

'रेज़िन' और **'ग्लास फाइबर'** जो अधिक मजबूत प्लास्टिक की श्रेणी में गिने जाते हैं, अपेक्षाकृत नवीन माध्यम हैं और मोटरकार इन्डस्ट्री में मजबूत और हल्की वजनदार चीजों को बनाने के काम में लाए जाते हैं। 1950 की शुरुआत तक मूर्तिकार इस माध्यम में काम नहीं कर रहे थे। यह माध्यम कम लागत में और सरलता से उपलब्ध हो जाता है। अतः नये मूर्तिकार इस माध्यम में काम कर सकते हैं। यद्यपि इस माध्यम में काम करने के लिए विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है।

मूर्तिकला के अन्तर्गत 'रेज़िन' और 'ग्लास–फाइबर' एक नया आधुनिक माध्यम है। इस समय अनेक युवा मूर्तिकार व वरिष्ठ मूर्तिकार इस माध्यम में कार्य कर रहे हैं। अमेरिका के समकालीन मूर्तिकार **'रॉबर्ट मौरिस'** और 'ब्रिटिश मूर्तिकार **'फिलिप**

किंग' ने रेज़िन और ग्लास–फाइबर में काफी काम किया है।

सामग्री (Material)– रेज़िन और ग्लास–फाइबर के अन्तर्गत **'मोल्ड्स'** के द्वारा कास्टिंग करना मेटल–कास्टिंग की अपेक्षा अधिक सरल होता है। फाइबर–ग्लास जैसा कि नाम से ही ज्ञातव्य है, पतले काँच के रेशों का समूह होता है, जिन्हें विविध रूपों में उपलब्ध अनेक प्रकार के बाँधने वाले तत्त्वों व सामग्रियों (Bonding agent) के मिश्रण से एकीकृत किया जाता है।

रेज़िन **'तेल'** से निर्मित पदार्थ होता है। रेज़िन **'थर्मोसैटिंग ग्रुप के प्लास्टिक'** की शृंखला के अन्तर्गत स्थान रखता है। मूर्तिकार अधिकांशतः पोलिएस्टर रेज़िन और एपोक्सी रेज़िन का प्रयोग मूर्ति निर्माण में करते हैं। इनमें **'पोलिएस्टर रेज़िन'** अधिक लोकप्रिय है। पोलिएस्टर रेज़िन **'तरल रूप'** (Liquid Form) में उपलब्ध होता है, जिसके अन्तर्गत जम जाने की प्रवृत्ति विद्यमान रहती है। यह केमिकल रिएक्शन के द्वारा ठोस रूप में परिवर्तित हो जाता है जो कि पोलिएस्टर रेज़िन में दो अन्य पदार्थों के मिश्रण से प्राप्त होता है। इनमें से **पहला** है– **'एक्सीलेरेटर'** (गति–वृद्धि करने वाला पदार्थ) जो कि गिलट धातु के समान सफेद दानेदार परिशोधक केमिकल पदार्थ होता है तथा **दूसरा** है– ठोस रूप प्रदान करने वाला पदार्थ जो **'मेथिल'** (Methyl) नामक वनस्पति से बनने वाला **'मघ'** और **'ऐथेल'** (Ethyl) जो मघ बनाने का आधार होता है, इन दोनों पदार्थों के मिश्रण से केमिकल रिएक्शन होता है जो लगभग आधे घंटे का समय लेता है और यह तरल पदार्थ **'जिलेटिन'** जैसे ठोस पदार्थ में परिवर्तित हो जाता है। इस समय के दौरान मूर्तिकार को अपना कार्य अवश्यंभावी तौर पर करते रहना चाहिए क्योंकि यही समय कहा जाता है– **'जैल टाइम'** (Gel-time) जैसे–जैसे यह प्रक्रिया आगे चलती है यह पदार्थ धीरे–धीरे और भी सख्त होता जाता है। तरल पदार्थ की सेटिंग को बहुत से तत्त्व नियन्त्रित करते हैं। जैसे– **'एक्सीलेरेटर और केटेलिस्ट' की आनुपातिक मात्रा, रेज़िन का परिमाण या मात्रा तथा केमिकल के द्वारा उत्पन्न गर्मी** जो उसे प्रदान की गई है। तरल पदार्थ से ठोस रूप में आने के इस परिवर्तन को 'क्योरिंग' (Curing) कहा जाता है। पोलिएस्टर रेजिन विभिन्न रेंज में उपलब्ध हो जाता है परन्तु जो मूर्तिकारों के लिए सर्वाधिक उपयोगी है वह है– **'लेमिनेटिंग और क्लियर कास्टिंग रेज़िन'**। लेमिनेटिंग रेज़िन को फाइबर–ग्लास के साथ मिलाकर उपयोग में लाया जाता है जो कि विभिन्न लेमिनेट की गई सतहों (Layers) के रूप में बनाया जाता है।

बाजार में उपलब्ध सामग्री निम्न प्रकार से है–

- ग्लास फाइबर मैट (Glass Fibre Mat)
- एसेटोन द्रव्य (Acetone)

- सख्त बनाने वाला तरल द्रव्य (Liquid Hardner)
- पारदर्शी चपड़ी (Transparent Shellae)
- पृथक किया गया मैटल फिलर (Assorted Metal Filler)
- पृथक करने वाला एजेन्ट (Parting Agent)
- थिक्सोट्रोपिक पेस्ट (Thixotropic Paste)
- सिलिकोन मोल्ड रबड़ (Silicone Mould Rubber)
- मोम को पृथक करने वाला एजेन्ट (Wax Parting Agent)
- साफ करने व खाँचों में भरने वाली क्रीम (Cleasing and Barrier Creams)
- सुरक्षित करने वाले एजेन्ट्स (Curing Agents)
- पृथक किया गया पाउडर फिलर (Assorted Powder Fillers)
- पोलिएस्टर रेज़िन के टिन (Tins of Polyester Resin)
- पॉलिश करने वाला मिश्रण (Polishing Compound)
- पॉलिश को चमकाने वाला मिश्रण (Buffing Compound)
- सफेद मोम (White Wax)
- ग्लास फाइबर के कटे हुए टुकड़े (Chopped Glass Fibre)
- पॉलिश करने वाला सामान (Polising Attachments).

रेज़िन कास्टिंग के टूल्स अथवा उपकरण–

रेज़िन विविध प्रकार के उपकरणों के माध्यम से किया जाता है जिनमें से अधिकांश अन्य मूर्तिकला के माध्यमों और प्रक्रियाओं में प्रयोग में लाये जाते हैं। ये उपकरण मुख्यतया निम्न प्रकार से हैं–

- सर्फोर्म (Surform)
- मोटी गोल व समतल रेती (Dread nought File flat & Rounded)
- धातु काटने की आरी (Hacksaw)
- कैंची (Scissors)
- दस्तकारी चाकू (Craft Knife)
- सजावट के लिए ब्रश (Decorators Brushes)
- पैलेट चाकू (Palette Knife)

- पिगमेन्ट को फैलाने वाला औज़ार (Spatula)
- भूरे रंग की भारी धातु व कार्बन का यौगिक तथा गीले और सूखे कागज (Tungsten Carbide and wet and dry paper)
- रबड़ दस्ताने (Rubber Gloves).

प्लास्टिक (Plastic)

सामान्यतया प्लास्टिक को एक आधुनिकतम माध्यम माना जाता है परन्तु आश्चर्य यह है कि इसकी खोज का प्रथम समाचार लन्दन की एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में, जो कि 1862 में हुई थी, व्यापक रूप से प्रसारित किया गया था। इसकी सामग्री (Material) सैल्यूलॉस नाइट्रेट पर आधारित **'पार्केसाइन'** नामक पदार्थ थी, जो कि दो ब्रिटिश धातु–शोधन करने वाले व्यक्तियों **'पार्केस'** और **'डी स्पिल'** द्वारा विकसित की गई थी। पार्केसाइन प्रमुखतया पहले से ही विद्यमान सामग्रियों का ही प्रतिनिधि अथवा परिवर्तित रूप था जैसे– **'हाथी दाँत'** (Ivory), **'सख्त लकड़ी'** (Hard Woods) और **'कछुए की खाल'** (Tortoise Shell), जो कि पहले से ही बहुत कम मात्रा में उपलब्ध थे। इनका कभी भी अधिक सदुपयोग नहीं किया गया था। अतः 1869 में दो अमेरिकन भाइयों **'जॉन ह्यैट'** (John Hyatt) और **'इसैह'** (Isaiah) ने उसी प्रकार के प्लास्टिक **'सैल्यूलॉइड'** (Celluloid) को पेटैंट कराया और बाजार के उपयोग के लिए उसको बनाना प्रारम्भ किया। अगले 70 वर्ष कैमिकल–उत्पाद के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। 1907 में 'लिओ–हैन्ड्रिक बेकलैन्ड' (Leo Hendrik Baekeland) द्वारा 'फिनोल–फोर्मेल्डिहाइड' पर आधारित 'बेक–लाइट' को विकसित किया गया। तत्पश्चात् **'पोलिथीन'** जो आज की सबसे अधिक प्रचलित सामग्री है को 1933 में ब्रिटेन में बनाया गया। लगभग इसी समय में अमेरिका में **'प्लैक्सीग्लास'** एक्रेलिक शीट का पेटेंट कराया गया। जबकि **'परपैक्स'** को ब्रिटेन में 1936 में विकसित किया गया। इन्हीं 70 वर्षों में कला के क्षेत्र में भी अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देखे गये। इनमें से अनेक में 'प्लास्टिक' ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1920 में मास्को में दो भाइयों **'एन्टोइन पेव्सनर'** (Antoine Pevsner) और **'नाअम गाबो'** (Naum Gabo) ने अपना 'रियलिस्टिक मैनीफेस्टो' (Realistic Manifesto) प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने उस तक के प्रचलित कला के सिद्धान्तों (Principles of Art) पर आक्रमण करते हुए एक नया डाइरेक्शन प्रस्तावित किया, जो कि **'कन्सट्रक्टिविज़्म'** (Constructivism) के नाम से जाना गया। इसके माध्यम से उन्होंने **'ठोस'** (Solid), **वजनदार** (Heavy Masses) और **अधिक जगह** (Volumes) **घेरने वाले** पदार्थों को मूर्तिकला के क्षेत्र से बिल्कुल बाहर कर दिया तथा उसके स्थान पर हल्के व हवादार आकार निर्मित किये गये जिन्हें पारदर्शी चद्दरों से तैयार किया गया विशेषकर सैल्यूलॉइड से, जिन्हें एक विशेष स्थान पर 'ठहरी **हुई**

शक्तियों' (Static Forces) तथा **'गतिमान शक्तियों'** (Kinetic Forces) को दिखाने के लिए तैयार किया गया था। गाबो ने इनमें विशेषकर प्लास्टिक का प्रयोग किया। यह 4' ऊँचा है। इसमें विविध प्रकार के माध्यम जैसे– पर्सप्लैक्स, काँच, धातु और लकड़ी को प्रयोग में लाया गया है। गाबो 'कन्स्ट्रक्टिविज्म' को जन्म देने वालों में से ही एक कलाकार था और 20वीं शताब्दी के मूर्तिकारों में सर्वाधिक नवीन प्रयोग करने वालों में से था। गाबो ने इस मूर्तिशिल्प में पारदर्शी सामग्री जैसे– पर्सप्लैक्स का सर्वाधिक प्रयोग किया है जो कि यह बताता है कि किस प्रकार से विभिन्न सामग्रियों को जोड़कर भी मूर्तिशिल्प को अपेक्षाकृत सरल और साफ–सुथरे ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। गाबो ने **'नॉन–फिगरेटिव', कॉम्प्लैक्स व अन्तर्प्रविष्ट** (Inter-penetrating) **एक्रेलिक कन्स्ट्रक्शन** अधिकांशतया 1930 से 1940 के बीच इंग्लैण्ड में तैयार किये।

पिछले 20 वर्षों में प्लास्टिक मूर्तिशिल्पों में **'प्राकृतिक'** व **'कृत्रिम प्रकाश'** (Light) का भी प्रयोग किया जा रहा है। आज मूर्ति शिल्पकारों की आवश्यकता को देखते हुए विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक और उनमें रंगों की असीमित रेंज दी जा रही है। इस माध्यम में मूर्तिशिल्पकारों के लिए अनेक संभावनाएँ छिपी हुई हैं। सामान्यतया प्लास्टिक दो प्रकार के होते हैं–

1. रिजिड प्लास्टिक (Rigid Plastic)– जिसमें एक्रेलिक शीट, पोलिस्ट्रिन्स (Polystyrenes) आते हैं।

2. फ्लैक्सिबिल प्लास्टिक (Flexible Plastic)– जिसमें पीवीसी (Polyvinyl Chloride) और पोलिथीन व उसके समान के प्लास्टिक सम्मिलित किये जा सकते हैं। प्लास्टिक अत्यन्त उपयोगी सामग्री होता है और इस पर विभिन्न प्रकार की टेकनीक आजमाई जा सकती हैं। अधिकांशतया इनका प्रयोग भवन–निर्माण की सामग्री के तौर पर होता आया है परन्तु इसके साथ विभिन्न प्रकार के प्रयोग किये जा सकते हैं जैसे– कटिंग, कार्विंग (Cutting & Carving) इत्यादि।

प्लास्टिक के लिए उपयोग में आने वाले उपकरण (Tools)–

इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के उपकरणों की आवश्यकता होती है और ये इस बात पर निर्भर करता है कि कौनसा प्लास्टिक काम में लिया जा रहा है– रिजिड या फ्लैक्सिबिल।

- सरफार्म (Surform)
- विभिन्न प्रकार की शेप वाले वायर टूल्स (A Selection of Wire Tools) ये सभी बहुत नुकीले होने चाहिए जो रिजिड प्लास्टिक की कटिंग में काम में लिए जाते हैं।
- बिजली से चलने वाला इलेक्ट्रिक उपकरण छेद बनाने के लिए (An Electric Engraving Tool)

- काटने की आरी (A General purpose Saw)
- फेस मास्क (A Face Mask)
- छेद बनाने का कीला (A Scribe)
- छेद बनाने की हाथ से चलाने वाली ड्रिल मशीन (A Drill)
- एक धातु की रेती (A Metal File)
- एक क्राफ्ट चाकू (A Craft Knife)
- जी–क्लैम्प (G Clamp) बहुत उपयोगी उपकरण होता है जब तक कि सभी पाइप जुड़ न जायें।

गतियुक्त या गति–सम्बन्धी (Kinetics)

'गति' आज आधुनिकतम माध्यम है। अतः मूर्ति में गति प्रदान करना आज बहुत–से मूर्तिकारों का लक्ष्य बनता जा रहा है परन्तु अपने आप में मूर्ति स्थिर ही होती है। मूर्तियों को गतियुक्त बनाने के पीछे इंजीनियरों, वैज्ञानिकों व स्वयं मूर्तिकारों की भी रुचि रही थी। 16वीं शताब्दी में हुए घड़ी के आविष्कार से लेकर 18वीं शताब्दी तक के जटिल खिलौनों को देखते हुए स्वतंत्र रूप से गतियुक्त वस्तुओं के प्रति इच्छा जागृत होना स्वाभाविक ही है।

यह गति तभी एक कला–रूप बन सकी जब स्वयं कलाकारों ने अपने परम्परागत माध्यमों को छोड़कर उनसे बाहर आना प्रारम्भ किया। **मार्शल दुशां** ने सबसे पहला गतियुक्त आर्ट पीस (कलाकृति) 1913 में बनाया वह था **'बाइसिकल व्हील'** (Bicycle Wheel)। **यह सबसे पहली गतियुक्त कलाकृति थी जिसमें एक लकड़ी के स्टूल पर बाइसिकल का पहिया लगाया गया था।** यद्यपि यह स्वयं–चालित मूर्तिशिल्प नहीं था वरन् जब कोई उसे हिलाता था तभी वह गतिमान होता था।

परन्तु दुशां से लेकर आज तक मूर्तिशिल्प के संसार में गति को विभिन्न तरीकों से प्रयोग में लाया जा रहा है। कलाकारों ने समाज के मशीन समान व्यवहार को दिखाने के लिए तथा **समय** के तत्त्व को अपने मूर्तिशिल्प में दिखाने के लिए इसमें गतित्व के तत्त्व को महत्त्व देना प्रारम्भ किया। सरल से जटिल तक के विचार इन मूर्तिशिल्पों के माध्यम से दिखाये जाने लगे। रशियन आर्टिस्ट **नाओम गाबो** (Naum Gabo), जो कि एक कन्स्ट्रक्टिविस्ट मूर्तिकार था, ने 1920 में **'स्टैण्डिंग वेब'** शीर्षक से एक काइनेटिक कन्स्ट्रक्शन तैयार किया, जिसे बिजली से चलने वाली मोटर के द्वारा गतित्व की शक्ति प्रदान की गई। आगे बहुत से मूर्तिकारों ने इस तकनीक में काम किया। जैसे– लाज़लो मोहोली नेगी (Laszlo Moholy Nagy) 1930 में, हंगेरियन–फ्रेन्च आर्टिस्ट निकोलस

शोफर' (Nicolas Schoffer), स्विस मूर्तिकार जीन टिंगुले (Jean Tinguely), अमेरिकन मूर्तिकार अलेक्जेण्डर काल्डर (Alexander Calder) आदि ने अपने–अपने तरीके से इस आन्दोलन को आगे बढ़ाया। फ्रेन्च कलाकार निकोलस शोफर (Nicholas Schoffer) ने **गतिमान विशाल टॉवर** बनाये जो प्रकाश को भी परावर्तित करते थे। काइनेटिक मूर्तिशिल्प ने आज बहुत बेहतर स्तर प्राप्त कर लिया है जिसके अन्तर्गत विभिन्न तकनीकों का इस्तेमाल किया जा रहा है।

म्यूरल तथा भित्ति–चित्रण

'भित्ति–चित्रण' प्राचीन तकनीक है जिसे हम प्रारम्भ में चित्रकला वाले अध्याय में देख चुके हैं। **'म्यूरल' भित्ति–चित्रण की आधुनिक विधा है** जिसमें कलाकार सीधे दीवार पर भी कार्य कर सकता है अथवा वह अपना डिजाइन अलग से तैयार करके उसे दीवार पर लगा सकता है। इसके लिए वह बोर्ड अथवा कैनवास आदि किसी भी धरातल का इस्तेमाल कर सकता है तथा इस धरातल के ऊपर वह विभिन्न प्रकार की सामग्रियों का इस्तेमाल कर सकता है; जैसे–

- कॉँच, ऑयल–कलर, इनेमल पेन्ट, बजरी, सीमेन्ट, ऐक्रेलिक रंग, सिरेमिक टाइल, ब्रोकन–टाइल्स, तरह.–तरह की चिपकाने की चीजें, मोज़ाइक, पेपर–मैशी, टैराकोटा–टाइल्स, फाइबर–ग्लास, लकड़ी, बोर्ड, कीलें आदि।
- फेविकोल की आवश्यकता इन पदार्थों को चिपकाने के लिए होगी।
- कागज, अखबार के कागज, पतंग के कागज आदि का भी इस्तेमाल किया जाता है।
- आजकल कलाकार मशीन के कलपुर्जों का भी इस्तेमाल म्यूरल बनाने के लिए करने लगे हैं।

कलाकार आजकल पूर्णतया स्वतंत्र हैं और म्यूरल आदि तकनीक में भी वह बँधकर काम नहीं करना चाहता है। अतः स्वतन्त्र रूप से अपनी सामग्री का प्रयोग करता है। प्राचीन काल में मिस्र के पिरामिडों व गिरिजाघरों की दीवारों पर म्यूरल बनाये गये हैं। बाहरी दीवारों पर बनाये गये म्यूरल का धूप, पानी व धूल–मिट्टी आदि से बचाव करना होता है।

ग्राफिक डिजाइन

पिछले दस वर्षों के काल में **'ग्राफिक डिजाइन'** कला के क्षेत्र में चमत्कारिक परिवर्तन आया है और यह पेपर और पेन्सिल के संसार से बाहर निकलकर कम्प्यूटर प्रिन्ट और डिजाइन के क्षेत्र में प्रवेश कर गई है। 21वीं सदी उन ग्राफिक डिजाइन बनाने वालों

को ही समर्पित है जो आज कम्प्यूटर के सॉफ्टवेयर डिजाइन के साथ अपने विचारों और दृष्टि का तालमेल बिठाकर काम कर रहे हैं।

वस्तुतः आम बोलचाल में ग्राफिक डिजाइन समाचार–पत्र, पत्रिकाओं, पोस्टर, होर्डिंग, वेबसाइट, कलेण्डर, कार्ड आदि से सम्बन्धित डिजाइन बनाने की कला है जिनके माध्यम से साधारण व्यक्ति तक कोई सन्देश पहुँचाया जाता है। ग्राफिक डिजाइन का उद्देश्य सन्देश को **'सम्प्रेषित'** (Communicate) करना होता है। **''योजनाबद्ध तरीके से की गई कोई उद्देश्यात्मक प्रक्रिया, जो डिजाइन के तत्त्वों व सिद्धान्तों पर भी आधारित हो, तथा जिसे क्रमबद्ध रूप से प्रदर्शित किया जाए, ग्राफिक डिजाइन के अन्तर्गत स्थान रखती है।''**

ग्राफिक डिजाइन को किसी भी मुद्रण माध्यम द्वारा प्रतिलिपियाँ बनाने योग्य भी होना चाहिए अर्थात् उस डिजाइन के अन्तर्गत चित्रों आदि के साथ–साथ कोई लिखा हुआ सन्देश भी हो तथा जिसे मशीनों द्वारा **'मुद्रित'** (Print) कर उसकी अनेक **'प्रतिलिपियाँ'** (Reproductions) बनाई जा सकें। तभी उस डिजाइन में सम्प्रेषण की क्षमता पैदा होती है और सन्देश अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचता है। अतः किसी भी लिखित सन्देश को चित्र आदि से सुसज्जित करके अधिक से अधिक पाठकों अथवा दर्शकों तक प्रभावी ढंग से पहुँचाना ही किसी भी ग्राफिक डिजाइन का उद्देश्य होना चाहिए।

ग्राफिक डिजाइन के अन्तर्गत तीन बातें प्रमुख रूप से होनी चाहिए–

1. किसी भी वस्तु अथवा उत्पाद की पहचान कराना।
2. उसी प्रकार के अन्य उत्पादों से तुलनात्मक सूचना प्रदान करना तथा उसके उपयोग करने के तरीके आदि बताना।
3. उत्पाद का प्रभावी प्रस्तुतीकरण जिससे उसकी बिक्री की संभावनाएँ बढ़ सकें।

ग्राफिक डिजाइन का इतिहास–

ग्राफिक डिजाइन के इतिहास को समझने के लिए हमें मानव सभ्यता के इतिहास में झाँकना होगा जब आदि–मानव ने अपने विचारों अथवा भावनाओं को किन्हीं **'संकेतों'** व **'ध्वनियों'** के माध्यम से दूसरों को सम्प्रेषित करना प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् उन्हें सुरक्षित करने के विचार से गुफाओं की दीवारों पर कुछ संकेतात्मक चित्र बनाने प्रारम्भ किये जिनके उदाहरण हमें **'नव–पाषाण काल'** तक के उपलब्ध हो जाते हैं। आगे चलकर सभ्यता के विकास के साथ–साथ 3500 ई.पू. एक **'चित्रात्मक लिपि'** का विकास हुआ, जिसके प्रमाण हमें मेसोपोटामिया, सिन्धु एवं मिस्र की सभ्यताओं से प्राप्त होते हैं। इसी चित्रात्मक लिपि को चिह्नों के प्रयोग के आधार पर **'कीलाक्षर लिपि'** (Cuneiform) का रूप दिया गया, जिसे

गीली मिट्टी की पट्टियों पर शलाका द्वारा दाब देकर अंकित किया जाने लगा। सुमेर के शासक **'हम्मूराबी'** के प्रसिद्ध शिलालेख इसी लिपि में अंकित किये गये। ये शिलालेख जन–साधारण के लिए विभिन्न विधि संहिता की जानकारी हेतु उत्कीर्ण किये गये थे। लगभग 2600 ई.पू. मिस्र में कागज के प्रारम्भिक रूप **'पेपिरस'** का विकास हुआ जिसे दृश्य–सम्प्रेषण का एक महत्त्वपूर्ण अगला कदम कहा जा सकता है तथा मिस्र की **'हेरोग्लिफ्स लिपि'** की सहायता से संदेश को सर्व–साधारण तक सम्प्रेषित करने के उद्देश्य से ही सर्वप्रथम पेपीरस से चित्रात्मक पाण्डुलिपि का निर्माण किया गया जिसके अन्तर्गत वर्णों और चित्रों को संयुक्त रूप से उपयोग में लाया गया। यह संसार की प्रथम वर्णात्मक लिपि मानी जाती है। 1500 ई. पू. में **फिनिशिया** (लेबनान, इज़राइल, सीरिया आदि प्रदेश) के लोगों ने 26 वर्णों का निर्माण किया जो आगे चलकर पाश्चात्य देशों की 24 वर्णों की वर्णमाला के जन्मदाता बने जो इन्हीं अक्षरों में किंचित बदलाव करके बनाई गई थी। वर्णमाला व लिपि के पश्चात् दृश्य–सम्प्रेषण के संसार में **मुद्रण–कला** के आविष्कार ने एक नई क्रान्ति ला दी। **सर्वप्रथम चीन में लकड़ी के ब्लॉक बनाकर मुद्रण करना प्रारम्भ किया गया।** चीन में ही 105 ई. में कागज का आविष्कार हुआ जो लिपि और मुद्रण कला को विकसित करने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। चीन के महान दार्शनिक **कन्फ्यूशस** के उच्चकोटि के साहित्य (Confucian Classic) को, जो पत्थरों पर लिखा गया था, पर स्याही लगाकर मुद्रित किया गया। चीन के **पेइ सेंग** (Pi Sheng) ने 1040 ई. में पकाई गई मिट्टी के अलग–अलग अक्षरों को लकड़ी के ब्लॉक में रखकर **'गतिशील अक्षरों'** द्वारा मुद्रण करना प्रारम्भ किया परन्तु अक्षरों की जटिलता के कारण इनका अधिक विकास नहीं हुआ तथा यह कला वहाँ से यूरोप पहुँची और 13वीं सदी के प्रारम्भ में यूरोप में **'लकड़ी के ब्लॉक'** बनाकर मुद्रण किया जाने लगा। प्रारम्भ में धार्मिक छवियों व ताश के पत्तों का मुद्रण किया गया। सन् 1440 में जर्मनी के **'जॉन गुटेनबर्ग'** (John Gutenberg) ने धातु के गतिशील अक्षरों को तैयार कर 42 लाइनों की बाइबिल का मुद्रण किया, जिसे **'प्रथम मुद्रित पुस्तक'** (धातु के गतिशील अक्षरों द्वारा) होने का श्रेय प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् गुटेनबर्ग ने टाइपों का प्रयोग कर गतिशील अक्षरों के साथ चित्र भी मुद्रित किये। 1460 ई. में जर्मनी के **'अल्ब्रैश फिशर'** (Albrecht Pfishter) द्वारा गुटेनबर्ग के टाइप और लकड़ी के ब्लॉक के प्रयोग द्वारा सचित्र पुस्तक **'दी फार्मर फ्रॉम बोहमैन'** का मुद्रण किया गया।

सन् 1475 में **'विलियम कैक्सटोन'** (William Caxton) ने इंग्लैण्ड में प्रथम प्रेस की स्थापना की तथा 1477 में अंग्रेजी भाषा का प्रथम विज्ञापन पोस्टर मुद्रित किया। मुद्रण तकनीक के विकास के साथ–साथ 17वीं सदी के मध्य तक साप्ताहिक समाचार पत्रों तथा पुस्तकों का प्रकाशन संभव हो सका, जिनके माध्यम से व्यापारी वर्ग ने अपने उत्पादों की सूचनाएँ देना प्रारम्भ किया। औद्योगिक विकास के साथ–साथ मुद्रण तकनीक में भी परिवर्तन आया।

सूचना व प्रसारण के क्षेत्र में ग्राफिक डिजाइन तकनीक ने आज उत्तरोत्तर बहुत विकास कर लिया है। आधुनिक कला आन्दोलनों, यथा– घनवाद, भविष्यवाद, दादावाद आदि ने 20वीं सदी के ग्राफिक डिजाइन को बहुत हद तक प्रभावित किया। 1970 से 80 तक के दशक में ग्राफिक डिजाइन में नई–नई तकनीकी विस्तार होता रहा। सन् 1984 में **'मैकिन्तोष'** (Machintosh) ने कम्प्यूटर ग्राफिक्स का प्रारम्भ कर ग्राफिक डिजाइन के संसार में नई क्रान्ति ला दी। इस इलेक्ट्रोनिक तकनीक के प्रयोग ने डिजाइन की शैली और विषय–वस्तु को बहुत अधिक प्रभावित किया। इस प्रकार 1990 के दशक तक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर डिजाइन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ तथा 20वीं सदी के अन्त तक फोटोग्राफी, फिल्म, वीडियो तथा साथ ही इन्टरनेट के उत्पादों आदि में ग्राफिक डिजाइन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सामग्री एवं उपकरण (Material & Equipment)

आधुनिक युग **'कम्प्यूटर'** के माध्यम से बनाये गये ग्राफिक डिजाइन का युग है। अतः परम्परागत रूप से हाथ से ग्राफिक–डिजाइन के निर्माण की सामग्री को इस उपकरण ने नगण्य ही बना दिया है। कम्प्यूटर ने ग्राफिक डिजाइन निर्माण की परम्परागत जटिल प्रक्रियाओं को बेहद सरल बना दिया है। यद्यपि वर्तमान में कम्प्यूटर ही ग्राफिक डिजाइन के सृजन का सबसे महत्त्वपूर्ण उपकरण है तथापि ग्राफिक डिजाइन के परम्परागत उपकरण अथवा निर्माण सामग्री निम्न प्रकार से है–

1. कागज (Paper)– डिजाइन बनाने के लिए अनेक प्रकार के कागज बाज़ार में उपलब्ध हैं। जैसे– **आयवरी पेपर, कार्ट्रेज पेपर, कार्ड पेपर, पोस्टर पेपर, रंगीन पोस्टर पेपर, वाटर–कलर (जल–रंग) पेपर** इत्यादि।

2. पेन एवं पेन्सिल (Pens & Pencils)– यह डिजाइन का प्रारम्भिक उपकरण (Tool) होता है। आजकल बाज़ार में विभिन्न प्रकार की पेन्सिलें उपलब्ध हैं। यथा– **B से 6B, EB, EE / HB मध्यम स्तर की व H से 9H तक की श्रृंखला की पेन्सिलें।** आजकल क्लच पेन्सिलों (Cluch Pencils) का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

रंगीन पेन्सिल– इसमें 24 रंगों तथा 36 विभिन्न रंगों की पेन्सिलें बाज़ार में उपलब्ध हैं।

तकनीकी पेन– ग्राफिक डिजाइन में प्रयुक्त होने वाले पेन तकनीकी पेन कहलाते हैं। जैसे– रोटरिंग आइसोग्राफ (Rotring Isograph), रेपिडोग्राफ (Rapidograph), केलिग्राफी पैन (Calligraphy Pens), मैजिक मार्कर पेन (Magic Marker Pens) इत्यादि।

ड्राइंग–बोर्ड (Drawing Board)– इसके ऊपर कागज को रखकर डिजाइन

बनाया जाता है जो लकड़ी का बना होता है। यह विभिन्न आकारों में बाजार में उपलब्ध हो जाता है।

ट्रेसिंग–पेपर (Trasing Paper)– डिजाइन की अनुकृति अथवा एक भाग के जैसा दूसरा भाग बनाने के लिए ट्रेसिंग–पेपर अथवा बटर–पेपर की आवश्यकता होती है।

कटर (Cutter)– कागज अथवा माउण्ट बोर्ड या शीट को काटने के लिए कटर की आवश्यकता होती है।

परकार (Compass)– गोल आकृतियाँ या गोलाकार बनाने के लिए।

त्रिभुज (Triangle)– विभिन्न कोणों की सही नाप निकालने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। इसे सैट–स्क्वायर (Set Square) कहते हैं।

एयर–ब्रश (Air Brush)– इसे स्प्रे–गन (Spray-Gun) भी कहा जाता है। चित्र के रंगों में हल्का–गहरा प्रभाव लाने के लिए इस मशीन की सहायता से रंगों को हवा का दबाव देकर छिड़काव किया जाता है।

रेखक (Rutter)– सीधी रेखाएँ खींचने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

रंग (Colour)– आजकल विभिन्न प्रकार के रंग बाज़ार में उपलब्ध हैं– पोस्टर रंग, जल–रंग, एक्रेलिक रंग, ऑयल रंग, ऑयल–पेस्टल, ड्राई–पेस्टल, रंगीन स्याही आदि।

ड्राई ट्रान्सफर लैटरिंग (Dry Transfer Letering)– डिजाइन में लिखित संदेश को दिखाने के लिए इन अक्षरों का प्रयोग किया जाता है।

उपर्युक्त उपकरणों एवं सामग्री के साथ–साथ एक ग्राफिक डिजाइनर को कुछ अन्य **'सहायक सामग्री'** की भी आवश्यकता होती है। जैसे–

- ट्रेस करने के लिए लाइट–बॉक्स।
- फोटोग्राफी के लिए कैमरा।
- विभिन्न प्रकार व नम्बरों के ब्रश।
- मास्किंग–टेप।
- कैंची।
- गोंद या चिपकाने वाला पदार्थ।
- फिल्म।
- फोटो प्रिन्टिंग पेपर।
- अन्य फोटोग्राफिक रसायन इत्यादि।

बहु–साधन सम्पन्न कला (Multi-Media Art) अथवा बहु–माध्यम सम्पन्न कला

बहु–माध्यम सम्पन्न कला से तात्पर्य है जिस कला निर्मिति में एक से अधिक माध्यमों का प्रयोग किया गया हो। परम्परागत कलाओं में किसी एक ही माध्यम में चित्र अथवा मूर्ति आदि का निर्माण किया जाता था क्योंकि इन कलाओं में प्रयोगात्मकता का गुण नहीं था वरन् उनमें क्राफ्टमैनशिप अथवा शिल्पकारिता तथा गुणात्मकता पर ही अधिक जोर था।

18वीं शताब्दी के अंत में यूरोप में प्रभाववादी आन्दोलन के साथ ही आधुनिक कला का सूत्रपात हुआ और कला में विभिन्न प्रयोग प्रारम्भ हुए। प्रभाववादी कलाकारों ने भी अपनी कला में विभिन्न नवीन प्रयोग किये परन्तु आगे चलकर घनवादी कलाकारों ने जब **कोलाज** विधि का आरम्भ किया तभी से एक ही कलाकृति में विभिन्न माध्यमों का प्रयोग किया जाना आरम्भ हुआ। धीरे–धीरे प्रत्येक माध्यम अर्थात् चित्र, मूर्ति आदि सभी में विभिन्न प्रकार के माध्यमों का उपयोग किया जाने लगा। **'हेनरी मूर'** ने मूर्तिकला माध्यम में पत्थर, लकड़ी आदि के साथ धातु आदि का प्रयोग कर उसे नये आयाम प्रदान किये। आगे चलकर दादावादी कलाकारों ने विभिन्न **'आब्जेक्ट्स'** को ही डिस्प्ले करके उसे कलाकृति का नाम देना प्रारम्भ किया। भविष्यवादी कलाकारों ने **'गति'** को भी अपनी कलाकृति में शामिल कर उसे अधिक आयामी बनाया। आज मूर्तिशिल्प में **'काइनेटिक कला'** का बहुत जोर है। एक ही कलाकृति में अनेक माध्यमों, मशीन के कलपुर्जों तथा प्रकाश (Light) को भी माध्यम के रूप में प्रयोग में लाया जा रहा है। **'इन्स्टोलेशन आर्ट'** आज एक ऐसी कला साबित हो चुका है जिसमें चित्र–मूर्ति–लाइट–गति तथा परफोर्मेन्स आदि सभी का मिलाजुला स्वरूप देखा जा सकता है। वस्तुतः यही **'बहु–साधन सम्पन्न कला'** है। आज भारत में भी अनेक कलाकार अपनी कला को मल्टीमीडिया के प्रयोग के माध्यम से प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें अन्य माध्यमों के साथ–साथ प्रिन्ट मीडिया का भी प्रयोग किया जा रहा है। आज मूर्ति–चित्रकला, छापाचित्रण–फोटोग्राफी–प्रिन्ट मीडिया–परफोर्मिंग आर्ट आदि सभी को सम्मिलित रूप से एक ही कलाकृति के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

OOO